भगवान रजनीश साहित्य

१	जिन खोजा तिन पाइयां	२०.००
२	महावीर : मेरी दृष्टि में	३०.००
३	ईशावास्योपनिषद्	१५.००
४	साधना-पथ	३.००
५	सत्य की खोज	४.००
६	शून्य की नाव	३.००
७	सिंहनाद	१.५०
८	अज्ञात की ओर	२.००
९	संभोग से समाधि की ओर	६.००
१०	अस्वीकृति में उठा हाथ	५.००
११	समाजवाद से सावधान	४.००
१२	सत्य की पहली किरण	६.००
१३	प्रेम है द्वार प्रभु का	८.००
१४	ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया	४.००
१५	सम्भावनाओं की आहट	६.००
१६	कामयोग, धर्म और गांधी	३.००
१७	गीता दर्शन (पुष्प : ५)	५.००
१८	क्रांति-बीज	४.००
१९	पथ के प्रदीप	३.५०
२०	ढाई आखर प्रेम का	५.००
२१	अंतर्वीणा	५.००
२२	प्रेम के फूल	५.००
२३	मैं कौन हूं ?	३.००
२४	मिट्टी के दिए	५.००
२५	नये संकेत	२.००
२६	शांति की खोज	२.००
२७	कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१.००
२८	गहरे पानी पैठ	५.००
२९	मैं कहता आंखन देखी	६.००
३०	युवक और यौन	१.००
३१	प्रेम और विवाह	१.५०
३२	सूली ऊपर सेज पिया की	७.००
३३	घाट भुलाना बाट बिनु	७.००
३४	विद्रोह क्या है	१.५०
३५	ज्योतिष अर्थात् अध्यात्म	१.५०
३६	ज्योतिष अद्वैत का विज्ञान	१.५०
३७	ध्यान : एक वैज्ञानिक दृष्टि	१.५०
३८	समुंद समाना बुंद में	७.००
३९	नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०.७५
४०	सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१.५०
४१	मन के पार	१.००
४२	प्रगतिशील कौन	१.५०
४३	सारे फासले मिट गये	१.२५
44	From Sex to Super Consciousness	6.00
45	Meditation : A New Dimension	2.00
46	Beyond and Beyond	2.00
47	Yoga : As a Spontaneous Happening	2.00

[नोट : उपरोक्त उपलब्ध साहित्य हेतु आदेश एवं २० प्रतिशत अग्रिम राशि संचालक, सेल्स डिवीजन, जीवन जागृति आन्दोलन, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर को प्रेषित करें। बीस रु० से अधिक की पुस्तकों पर डाक व्यय नहीं लगेगा]

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

सितम्बर १९७२

युगान्तर

वर्ष – ४ अंक – ५ : ६

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

सितम्बर : १९७२

मानसेवी

सम्पादक : अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे, 'आकुल' राजेन्द्र

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ	
कृष्ण का दर्शन : एक दृष्टि	३	संकलन : मा योग मीरा
आकांक्षा : दुःख का मूल	४	भगवान श्री की बोध कथाओं से
व्यक्तिगत कर्म-फल : एक घातक धारणा (प्रश्नोत्तर वार्ता से)	५	संकलन : साध्वी योग गुणा
कृष्ण और गीता (निश्चल ध्यान-योग पर एक प्रवचन)	२१	संकलन : स्वामी धर्म सरस्वती
महा उद्घोष	४७	साधु आनंद ब्रह्मदत्त
गुरु-शिष्य सम्बन्ध (अंग्रेजी में दी गई वार्ताओं से अनूदित)	५२	अनुवाद : स्वामी परमानंद भारती, अजमेर

गीत : काव्य

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्	२०	स्वामी स्वराज्यानंद समर्थ
गाओ रे !	५१	के० के० शर्मा

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957

कृष्ण का दर्शन : एक दृष्टि

संकलन : *मा योग मीरा,*
जूनागढ़

- कृष्ण के सिर्फ होने का रास्ता निकलता है, बुद्ध से करना निकलता है।
- कृष्ण की बात साधना नहीं, स्मरण है। वे गीता में अर्जुन को सिर्फ याद दिला रहे हैं कि वह कौन है।
- कृष्ण एक पानी पर खींची गई रेखा की भांति जीते हैं, इसलिए कोई शिष्य नहीं बन पाये।
- कृष्ण की शून्यता हमें समझ में नहीं आती, क्योंकि जिससे हम भरे हैं— क्रोध वगैरह से, वह सब कृष्ण में दिखाई पड़ते हैं।
- महावीर के साथ 'मैं' को लिए बहुत दूर तक चल सकते हैं, लेकिन कृष्ण के साथ पहले कदम पर ही 'मैं' छोड़ना पड़ता है।
- कृष्ण पूरे जीवन 'न-कुछ' हैं और बुद्ध, महावीर आखिरी क्षण तक 'कुछ' रहेंगे।
- कृष्ण की भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, क्योंकि उनसे कल के लिए कुछ निकलता ही नहीं—कल का कृष्ण कल पैदा होगा।
- कृष्ण के विलक्षण व्यक्तित्व पर रहस्यवादी चित्त निहाल हो जायेंगे।
- बुद्ध की पद्धति साधना है और कृष्ण की पद्धति है सिर्फ— 'रिमेम्बरिंग', इसलिए कृष्ण का कोई साधक वर्ग खड़ा नहीं हो सका।
- कृष्ण सदा शून्य हैं, इसलिए आने-जाने में उनका कुछ नहीं बिगड़ता। कृष्ण घोषणा करते हैं पूरी स्वतन्त्रता से कि 'आ जाऊंगा जब भी जरूरत होगी'। आवागमन का डर नहीं है उनको।
- 'अर्जुन तू शरण आ जा'—कृष्ण कहते हैं। शरणागत का अर्थ एक ही है 'मैं' छूट जाय।
- कृष्ण की घटनाओं को जो दबाने की कोशिश कर रहे हैं, वे स्वयं के अपराधों को दबाने की कोशिश कर रहे हैं।
- 'गीता', प्रामाणिक है या नहीं, यह प्रश्न नहीं है। गीता, वह प्रामाणिक कृष्ण की खबर है कि अगर कृष्ण बोलेंगे तो ऐसा ही बोलेंगे।
- बुद्ध किसी को कुछ कह रहे हैं तो करुणा के कारण और कृष्ण कहते हैं तो अपने आनन्द के कारण।

आकांक्षा : दुख का मूल

इच्छायें दरिद्र बनाती हैं। उनसे ही याचना और दासता पैदा होती है। फिर उनका कोई अंत भी नहीं है। जितना उन्हें छोड़ो, उतना ही व्यक्ति स्वतन्त्र और समृद्ध होता है। जो कुछ भी नहीं चाहता है, उसकी स्वतंत्रता अनंत हो जाती है।

:

एक संन्यासी के पास कुछ रुपये थे। उसने कहा कि वह उन्हें किसी गरीब आदमी को देना चाहता है। बहुत से गरीब लोगों ने उसे घेर लिया और उससे रुपयों की याचना की। उसने कहा : "मैं अभी देता हूं—मैं अभी उसे रुपये दिए देता हूं जो कि इस जगत में सबसे ज्यादा गरीब और भूखा है।" यह कहकर संन्यासी भीतर गया। तभी लोगों ने देखा कि राजा की सवारी आ रही है। वे उसे देखने में लग गये। इसी बीच संन्यासी बाहर आया और उसने अपने रुपये हाथी पर बैठे राजा के पास फेंक दिये। राजा ने चकित हो, इसका कारण पूछा। फिर लोगों ने भी कहा कि आप तो कहते थे कि मैं रुपये सर्वाधिक दरिद्र व्यक्ति को दूंगा? संन्यासी ने हंसते हुए कहा : "मैंने उन्हें दरिद्रतम व्यक्ति को ही दिया है। वह जो धन की भूख में सबसे आगे है, क्या सर्वाधिक गरीब नहीं है।"

बोध कथाओं से

:

दुख क्या है ? कुछ पाने की और कुछ होने की आकांक्षा ही दुख है। दुख कोई नहीं चाहता, लेकिन आकांक्षायें हों तो दुख बना ही रहेगा। किन्तु जो आकांक्षाओं के स्वरूप को समझ लेता है, वह दुख से नहीं, उनसे ही मुक्ति खोजता है और तब दुख के आगमन का द्वार अपने आप ही बन्द हो जाता है।

● संकलन : *साध्वी योग गुणा*

व्यक्तिगत कर्म-फल : एक घातक धारणा

(प्रश्नोत्तर वार्ता से)

प्रश्न : भगवान श्री, हमारे सुख-दुख हमारे पूर्व-जन्मों के अच्छे-बुरे कर्मों के फल हैं, यह धारणा कहां तक ठीक है और भारत में इस धारणा के क्या परिणाम हुए हैं ?

कोई गुजर जायगा तो हम दुखी होंगे । या तो हमें पता चल जाय कि उसने कोई पाप किया, तो वह कम उम्र में चल बसा, तो हम निश्चित हो जायेंगे और अगर हमें पता न चले तो हम तकलीफ में होंगे । अब इसे हम अगर बहुत गौर से देखेंगे तो यह बहुत कठोर बात है । अगर पुराना पूरा चित्त यह कहता है कि अगर कोई आदमी दुख में पड़ा हो, तो उसने कोई पाप किया होगा । इसको थोड़ा समझने की कोशिश करना । इसका मतलब यह

- किसी को मार डालना इतना अपराधपूर्ण नहीं जितना कि किसी आदमी को हरिजन बनाकर सत्तर-अस्सी साल के लिए सूली पर लटका रखना है।
- कर्म बड़ी सामूहिक घटना है—व्यक्तिगत नहीं ।
- हिन्दुस्तान में इतने दिनों तक गरीबी के रहने का कारण यह धारणा है कि एक-एक व्यक्ति अपने-अपने कर्मों के फल भोगता है । दुनिया के धर्मों की इस व्याख्या ने, दुनिया जैसी है, उसको वैसी ही बनाये रखने में सहयोग दिया ।

होता है कि उसके दुख में सहभागी नहीं होना चाहते। हमें पक्का पता लग जाय कि इसने पाप किया है तो अपना फल भोग रहा है। हम उससे फिर कट गये। कोई आदमी दुख भोग रहा है, अगर हमें पक्का हो जाय कि उसने पाप किया है तो हम कहते हैं, ठीक है, अपना फल भोग रहा है। फिर हमारा संबंध ही खत्म हो गया। अगर पड़ोस में कोई आदमी मर जाय तो हम सोचेंगे कि कुछ किया होगा, इसलिए इतनी जल्दी मर गया। तो वह जो पीड़ा, वह करुणा जो हमारे प्राणों को झकझोर जाती है, उससे हम बच गये।

हमने एक व्यवस्था बना ली कि वह अपना फल भोग रहा है। हम यह मानने को राजी नहीं हैं कि जिन्दगी बड़ी रहस्यपूर्ण है। उसमें जरूरी नहीं है कि जो मरता हो उसने पाप किया हो, और जो नहीं मरता है वह पुण्यात्मा है, कि जो बच गया है वह पुण्य के कारण बच गया है और जो चला गया है वह पाप के कारण चला गया है। जिन्दगी बहुत रहस्यपूर्ण है। उसमें जन्म भी व्यवस्था है, उसमें मृत्यु भी व्यवस्था है। वहां जो चीजें आयेंगी, वह जायेंगी भी। लेकिन हम एक्सप्लेनेशन खोजते हैं और हम क्यों खोजते हैं, इसलिए नहीं कि जो आदमी चला गया है, व्याख्या खोज लेने से उसको कुछ हम रोक लेंगे—वह तो चला गया; लेकिन व्याख्या खोज लेने से हम छुटकारा पा जायेंगे।

अब मेरा कहना है कि जिसे हमने प्रेम किया है वह चला गया है, हमें रोना होगा, दुख झेलना होगा, झेलना चाहिए, व्याख्या हम क्यों खोजें? मैंने तुम्हें प्रेम किया है, तुम चल बसे हो तो मैं रोऊंगा, दुखी होऊंगा, पीड़ित होऊंगा। यह मेरे प्रेम का ही भाग है, यह मेरे प्रेम की ही नीति है। प्रेम तो मैंने किया था, तो तुम जब थे तो तुम्हारे होने का सुख मैंने लिया था, तुम्हारे न होने का दुख कौन लेगा? मैं यह पूछता हूं कि मैं एक व्यक्ति को प्रेम करता हूं और उसके होने का सुख मैंने लिया और आज जब वह चल बसा, तो उसके न होने का दुख मुझे लेना ही चाहिए, उतने ही आनन्द से जितने आनन्द से मैंने उसके होने का सुख लिया। लेकिन हम व्याख्या खोजना चाहते हैं। हम पूछना चाहते हैं, क्यों चला गया इसकी व्याख्या मिल जाय। सुख लेते वक्त तो हमने कभी नहीं पूछा कि उस व्यक्ति से हमें सुख मिल रहा है इसकी क्या व्याख्या है। हमने चुपचाप ले लिया था। दुख मिलते वक्त हम व्याख्या पूछने जाते हैं और तब दुख में भी हम दुख नहीं ले पाते—व्याख्या बीच में खड़ी हो जाती है।

- **कोई भीख मांगता है, तो उसके इस भीख मांगने में हम भी समानरूप से भागीदार हैं ।**
- **दायित्व सामूहिक है । मैं अपना किया ही नहीं भोगता दूसरे का किया भी भोगता हूं; और दूसरे अपना किया ही नहीं भोगते मेरा किया भी भोगते हैं ।**

बिहार में भूकंप हुआ तो कहा गया कि बिहार के लोगों ने हरिजनों के साथ जो पाप किया उसका फल भोग रहे हैं । अब यह जरा सोचने जैसा है । कितनी कठोर बात है, जैसे कि हरिजनों के साथ बिहार के लोगों ने ही बुरा काम किया हो और यह सारे मुल्क ने बुरा काम नहीं किया है हरिजनों के साथ । और अगर हरिजनों के साथ बुरा काम करने का भूकम्प फल है, तो इस पूरे समाज को कभी का रसातल में चला जाना चाहिए था, इसके बचने का कोई कारण ही नहीं है इस पृथ्वी पर; क्योंकि उसने इतना अनाचार किया है जिसकी गणना और हिसाब लगाना मुश्किल है । क्योंकि **किसी आदमी को मार डालना बहुत बड़ा अपराध नहीं है, क्योंकि आदमी क्षण भर में मर जाता है, लेकिन किसी आदमी को हरिजन बनाकर जिन्दा रखना एक लम्बी सजा है, और जो सत्तर-अस्सी साल तक उसे शूली पर लटका रखना है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है कि उसने कितना पाप किया है ।** वह भूकंप अगर उसका फल था, तो पूरे मुल्क को कभी का डूब जाना चाहिए था—जमीन पर होना ही नहीं चाहिये था । लेकिन बिहार में भूकम्प आया, वहां लोग तकलीफ में पड़े हुए हैं और हम व्याख्या कर लेते हैं कि वह वहां के लोगों ने हरिजनों के साथ जो दुर्व्यवहार किया था, उसका वे फल भोग रहे हैं । तुम सोचो, इस व्याख्या के सुनते ही क्या भूकम्प की जो पीड़ा है वह एकदम विदा हो जाती है ? मैं नहीं कहता कि व्याख्या सही या गलत है, यह सवाल नहीं है बड़ा । सवाल यह है कि जैसे हमने यह सुना है कि भूकम्प इसलिए पड़ा है कि इन लोगों ने पाप किया है, वे इसका फल भोग रहे हैं, वैसा ही वह जो दुख भोग रहा है—उसके प्रति हमारा भाव बदल गया है, बुनियादी रूप से बदल गया है, उसके हमारे बीच एक खाई का फासला हो गया है । तब हमें बिलकुल ऐसा लगेगा कि ठीक ही हो रहा है । अगर ठीक उसका परिणाम लें, तो उसका मतलब होगा कि ठीक ही हो रहा है, बल्कि फल मिलना ही चाहिए ।

अगर हम ऐसी व्याख्या सोचते हैं, तो हम एक तरह की दुनिया बनायेंगे, जो अत्यंत कठोर होगी और मेरा मानना है कि जिन लोगों ने जीवन के रहस्यपूर्ण तथ्यों की काल्पनिक व्याख्याएं कर ली हैं, उन लोगों ने कठोर दुनिया निर्मित की है। जैसे, मेरा मानना है कि हिन्दुस्तान में हमने बहुत कठोर समाज निर्मित किया है, क्योंकि हमने प्रत्येक चीज की व्याख्या खोज ली है और व्याख्या की वजह से सब कठोर और जड़ हो गया। **गरीब है तो हमने व्याख्या खोज ली कि अपने पाप का फल भोग रहा है। कम उम्र में मरा तो हमने कहा कि अपने किसी पाप का फल भोग रहा है। दुखी है, पीड़ित है, अंधा है, लंगड़ा है, लूला है—तो हमने सोचा कि अपने पाप का फल भोग रहा है।** हमने जब-जब व्याख्या कर ली तब-तब जो पीड़ा की गहराई थी, जो हमको छूती, वह न छू सकी।

मेरे पास अगर कोई किसी को लाता है, एक पागल आदमी को लेकर आता है, तो वह मुझसे पूछता है कि वह पागल क्यों है? पागल है, ठीक हो सकेगा कि नहीं हो सकेगा? किस पाप का फल भोग रहा है? वह पागल आदमी अब हो सकता है कि हम सबके पाप का फल भोग रहा हो, क्योंकि उसके बाप ने उसे पैदा करते वक्त डाक्टर से सलाह ही नहीं ली जाकर कि मेरा बच्चा पागल तो नहीं पैदा होगा? उसकी मां ने उसे पैदा करने के पहले नहीं पूछा विशेषज्ञों से कि मेरा बच्चा पागल तो नहीं हो जायगा? लेकिन पूछ यह रहे हैं कि कौन-से पाप का फल भोग रहा है—यह आदमी जो पागल है, किस पाप का फल भोग रहा है? उनको मैं क्या कहूं! उन्होंने यह भी नहीं पूछा, अथवा सोचा कि कहीं उन्होंने ही तो इसको पागल नहीं किया हुआ है। कितने बच्चे इसलिए पागल हैं कि मां-बाप जो उनके साथ बर्ताव कर रहे हैं, उससे वह पागल हो ही जायेंगे। लेकिन वह सवाल ही नहीं है!

हम व्याख्याएं चाहते हैं, जो हल कर दें मामले को और हम ऐसी व्याख्या चाहते हैं, जो हमें छुटकारा दिला सकें, यानी वह आदमी जिम्मेवार न रह जाय, **इसलिए हमने व्यक्तिगत कर्म की बहुत अद्भुत फिलासफी खोजी हुई है, जबकि वस्तुतः कर्म बड़ी सामूहिक घटना है, कर्म एकदम व्यक्तिगत घटना नहीं है।** कर्म का घटनाक्रम बड़ा सामूहिक और बड़ा जाल से भरा हुआ है, लेकिन हमने व्याख्या की है कि बच्चू भाई अपने कर्म का फल भोग रहे हैं, हमें अपने कर्म के फल भोगने चाहिये। न बच्चू भाई से मुझे कुछ लेना-देना है और न मुझसे उनको कुछ लेना-देना है। वह अपने कर्म का फल भोगते रहेंगे,

- एक-एक लहर का अपना व्यक्तित्व है, लेकिन एक-एक लहर का अपना अलग अस्तित्व नहीं।
- सामूहिक पागलपन हमें स्वीकार है, लेकिन व्यक्तिगत नहीं, जबकि समूह ही व्यक्तिगत पागलपन के लिए जिम्मेवार है।

मैं अपने कर्मों का फल भोगता रहूंगा। हमारी अलग-अलग यात्राएं हैं और कहीं कोई ताल-मेल नहीं है, कहीं हमारा कोई जोड़ नहीं है।

इस मुल्क ने ऐसी व्याख्याएं खोज लीं कि एक-एक व्यक्ति अपने-अपने कर्म-फल भोग रहा है, उसने एक-एक व्यक्ति को अलग-अलग तोड़ दिया है, इसलिए हिन्दुस्तान में इतने दिनों तक गरीबी रह सकी, क्योंकि हर आदमी ने समझा कि इससे हमें क्या लेना-देना है। यह हम जानकर हैरान होंगे कि सारी दुनिया में धर्मों ने जो व्याख्या दी है, उन्होंने दुनिया जैसी है उसको वैसी ही बनाये रखने में सहयोग दिया है। तो यह जो कल्पना है, विचार है, यह जो धारणा है कि मैं जिम्मेवार हूं—यह असल में पुराने सारे धर्मों के विपरीत है; क्योंकि पुराने सारे धर्म यह कहते हैं कि तुम अपने लिए जिम्मेवार हो। हम लोगों की कोई सामूहिक जिम्मेवारी जैसी कोई चीज ही नहीं है पुराने धर्मों में। पुरानी सारी की सारी व्याख्या समूह-चित्त के लिए कुछ भी नहीं कहती, वह सिर्फ व्यक्ति-चित्त के लिए कुछ कहती है और उसका परिणाम यह हुआ कि पांच हजार साल से समाज जैसा था वैसा ही है, क्योंकि यह बुनियादी बात ही पैदा नहीं हुई।

और मैं भी जिम्मेवार हूं। अगर मेरा लड़का पैदा होता है और वह पागल पैदा होता है, तो उसमें मैं भी जिम्मेवार हूं और मेरे पिता भी जिम्मेवार हैं और हजारों साल की सारी परम्परा जिम्मेवार है— उस बच्चे के पागल पैदा होने में, तो फिर बड़ी घबराहट होगी। अभी तो परेशानी सिर्फ इतनी है कि यह आदमी पागल है। तब परेशानी यह भी हो जायगी कि हमने भी कुछ किया है। तो हमने जब वह दंश हटा दिया है व्यक्ति के ऊपर से, व्यक्ति को बड़ी सुविधा हो गई है।

हम अपने रास्ते चले हों सड़क पर, एक आदमी भूखा मर रहा है, वह अपने ढंग से मर रहा है, हमें क्या लेना-देना है। इसलिए हिन्दुस्तान इनसेंसिटिव हो गया है, बिलकुल ही संवेदनशीलता है ही नहीं हममें किसी तरह की। एक आदमी भीख मांग रहा है, तो हम उसको डांट देंगे कि क्या भीख मांगते हो, शर्म नहीं आती! लेकिन हमें यह खयाल नहीं आता कि यह जो भीख मांग

रहा है, तो शर्म हमें भी आनी चाहिये, क्योंकि हम जिस समाज में खड़े हैं उसी में यह भीख मांग रहा है, इसमें कहीं न कहीं हमें भी शर्म में भागीदार होना चाहिए। हम बड़ी बेशर्मी से उसको कह सकते हैं, हटो शर्म नहीं आती, जवान होते हुए भीख मांगने में। लेकिन इसने जो समाज बनाया है, वह हमने भी बनाया है, हम भी उसमें भागीदार हैं— वह हमारे खयाल में नहीं आता।

वह जो बात है कुल जमा इतनी ही है कि निरंतर यह ध्यान रखने की जरूरत है। अगर एक नई दुनिया बनानी हो तो हमें पुराने सारे आधार बदल देने होंगे और बड़े से बड़ा आधार जो है, वह है—व्यक्तिगत कर्मों और व्यक्तिगत दायित्वों का। **दायित्व सामूहिक है, कर्मों का जाल भी सामूहिक है। मैं अपना किया ही नहीं भोगता, मैं दूसरों का किया भी भोगता हूं और दूसरे अपना किया ही नहीं भोगते, मेरा किया भी भोगते हैं।** क्योंकि हमारा जो रहना है, हमारा जो जीना है वह जीना, एकाकी —आइसोलेटिड—नहीं है, हम व्यक्ति तो हैं, लेकिन आइसोलेशंस नहीं है। **तो एक-एक लहर का अपना व्यक्तित्व है, लेकिन एक-एक लहर का अलग अस्तित्व नहीं है।** तो व्यक्तित्व हमारा अलग-अलग है, लेकिन अस्तित्व हमारा सामूहिक है और वह जो अस्तित्व का नीचे फैलाव है वह हमारे अनुभव में आ जाय, तो सब दुख, सब पीड़ा, सब आनन्द, सब सुख —सबके लिए हम जिम्मेवार हैं और अगर एक दफा यह बोध मनुष्य जाति के भीतर उतर जाये तो जिन्दगी को बदलने में देर न लगेगी, क्योंकि बदलाहट के बिन्दु को हमने पकड़ लिया जहां से बदलाहट हो सकती है।

अभी मैं परसों मनोविज्ञान कालेज में बोलने गया था मनो-चिकित्सा पर, साइको-थेरेपी पर बात करनी चाही थी। उनसे मैंने यही कहा कि हमने समाज बनाया वह तो ऐसा है कि एक-एक आदमी को रुग्ण कर दे और फिर हम इन्तजाम करते हैं चिकित्सा का। तो ज्यादा से ज्यादा चिकित्सा से इतना ही कर सकते हैं कि उसको हम वापिस उतनी सीमा तक रुग्ण कर दें जितनी सीमा तक काम चलाऊ व्यवहार में वह उपयोगी हो जाय। एक आदमी आता है, उसको हम कहते हैं, यह पागल हो गया है, इसको ठीक करना है— नार्मल लाना है। **तो कुल मतलब इतना है कि समूह जितने पागलपन के लिए राजी है उतने पागलपन की सीमा तक इसको पागल होना चाहिए उसके आगे नहीं।** बस, उतना यह पागल हो जाय तो ठीक है, कोई झंझट नहीं है। उससे ज्यादा होता है तब हमें कठिनाई शुरू होती है कि कुछ गड़बड़ हो गया है।

- **सारी दुनिया हिटलर को और उसके होने को गाली देती है, लेकिन हम सब वही काम करते हैं—जो हिटलर को पैदा करने वाले होते हैं।**
- **न कोई छोटा है, न कोई बड़ा बड़ा है—हम सब शक्तियों के पुंज हैं।**

नहीं, दो तरह के पागलपन हैं : **एक सामूहिक पागलपन है जिसको हम स्वीकार किए हुए हैं और एक व्यक्तिगत पागलपन है जो हमें स्वीकार नहीं है,** हम उसका व्यक्ति का इलाज कर-कराकर ठीक कराके बिठा देते हैं, लेकिन समाज वहीं का वहीं है। फिर उन्हीं लोगों के बीच एक पत्नी बीमार हो जाय, उसको हम ठीक-ठाक करके फिर उसी पति के पास पहुंचा देते हैं, उसी दुनिया में, जहां वह पागल हुई थी। उस दुनिया में कोई फर्क नहीं हुआ था—जहां न उसका पति बदला, न उसका बेटा बदला, न घर बदला, कुछ नहीं बदला, सब वैसे का वैसा है। यह स्त्री बस वहीं पागल हुई थी, इसको हम फिर ठीक करके वहीं घर में पहुंचा देते हैं। अब यह फिर पागल होगी। इसके पागल होने का तो सारा का सारा इन्तजाम पूरी अपनी जगह बैठा हुआ है। इसके पागल होने में इसका पति यह नहीं सोचता है कि मैं भी जिम्मेवार हूं। वह कहता है कि पागल हो गई है, तो इसका इलाज करवा दो। अगर उसको ऐसा अनुभव हो कि मैं भी जिम्मेवार हूं इसके पागल होने में, उसका बेटा भी सोचे कि मैं भी जिम्मेवार हूं उसके पागल होने में; क्योंकि मैं उसका बेटा हूं, यह मेरी मां है और मेरी मां पागल हो गई। तो यह कैसे हो सकता है कि बेटे में कोई गड़बड़ न हो और मां पागल हो जाय। क्योंकि बेटा और मां जो हैं वह एक ही चीज के दो छोर हैं; और यह कैसे हो सकता है कि पत्नी पागल हो जाय और पति में गड़बड़ न हो, क्योंकि पत्नी जो है वह पति का ही दूसरा छोर है। अगर यह पति, इसका बेटा, इसका भाई, इसकी मां, इसके बाप यह सोच सकें, समझ सकें कि हम भी कुछ कहीं न कहीं इसको पागल बनाने में जिम्मेवार हैं, तो फर्क हो सकता है और एकदम हो जायगा; नहीं तो फर्क नहीं हो सकता। ज्यादा से ज्यादा हम इसको फिर नार्मल बनाकर ले आयेंगे, दो-चार साल में फिर इसको पागल करने का इन्तजाम करेंगे।

और बात यह है कि किसी न किसी अर्थों में हम सामूहिक दायित्व को अनुभव करें। क्योंकि कहीं भी दूर से दूर कहीं कुछ हो रहा हो यह हमें खयाल में नहीं आ सकता। अब जैसे कि हिटलर हुआ है। **आज सारी दुनिया गाली देती है कि हिटलर का होना बुरा था और बहुत बुरा हुआ। लेकिन हम सब वही काम करते हैं, जो हिटलर को पैदा करने वाले हैं।** अभी

कोई नेता बम्बई में आये तो पचास हजार आदमी रैली करेंगे। पता नहीं कि रैली हिटलर पैदा करवाती है। हिटलर के पहले बहुत रैलियां हुई हैं, जिनसे वह पैदा हुआ है। मेरा मतलब समझ रहे हो तुम ? हिटलर के पैदा होने की सीढ़ियां हैं। वह सीढ़ियां सब हम पूरी कर देंगे। जब हिटलर पैदा हो जायगा तब हम कहेंगे कि यह तो बहुत बुरी घटना घट गई। हिटलर भी कोई आसमान से पैदा नहीं होता, उसे पैदा किया जाता है—हम सब पैदा करते हैं। हमें यह खयाल नहीं कि हम कैसी तरकीब से पैदा करते हैं, एक दफे एक आदमी कैसे हिटलर हो जाता है ? और जब हो जाता है तभी हमें पता चलता है। फिर बस के बाहर बात हो जाती है, लेकिन पैदा करने की प्रक्रिया हम पूरा करते हैं। हिटलर फिर-फिर पैदा होते रहेंगे। अभी हिटलर बन्द नहीं हो सकते हैं दुनिया में, क्योंकि दुनिया वहीं की वहीं है।

मैं एक गांव गया हुआ था। किसी ने पूछा कि अब तो हिटलर जैसे लोग पैदा नहीं होते, अब तो नाज़िस्म का कोई उपाय नहीं है। मैंने कहा, रोज उपाय है। वही का वही है सब, क्योंकि हिटलर जिस दुनिया में पैदा हुआ था, उस दुनिया में कोई फर्क नहीं पड़ा। आदमी का दिमाग वहीं का वहीं है, जिसमें हिटलर पैदा हुआ था। वह फिर पैदा हो जायगा। हिटलर ने तो सब उपद्रव किया, उसको हम गालियां देते हैं, लेकिन हमें खयाल नहीं है कि हम सारे लोगों ने, सारी दुनिया ने हिटलर को बड़ी प्रशंसा दी है। सब तरह की प्रशंसा ने उसको खड़ा किया था और वही रुख है। हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि उसकी सभाओं में शुरू-शुरू में जब उसके पास लोग बहुत कम थे और सभाओं में कोई आता भी नहीं था तब वह अपने बीस-पचीस लोगों को सभाओं में लेकर जाता था, जो भीड़ में चारों तरफ खड़े रहते और उन्हें पता होता कि कब उनको तालियां बजानी हैं। वे पच्चीस लोग तालियां बजायेंगे ठीक वक्त पर। और हिटलर ने कहा, मैं हैरान हुआ, क्योंकि पहले तो मैंने सोचा था कि पच्चीस ही तालियां बजेंगी, लेकिन तालियां तो दस हजार बजायी गयीं। बजायीं तो मेरे पच्चीस लोगों ने, लेकिन बाकी लोगों ने साथ दिया। **अब तुम कभी खयाल करना, तुम जब तालियां बजाते हो कहीं मीटिंग में, तो तुम्हारे बगल वाला ताली बजा रहा है इसलिए तो तुम नहीं बजाते हो, नहीं तो तुम हिटलर पैदा कर सकते हो।** मेरा मतलब समझा तुमने ? तुम्हारे अपने बगल वाले को देखकर तुमने ताली तो नहीं बजायी ? नहीं तो तुम पैदा कर सकते हो हिटलर, क्योंकि तुम इमीटेट कर सकते हो।

और हिटलर इतना ही चाहता है कि सब इमीटेट करने वाले लोग मिल जायं, फालो करने वाले लोग मिल जायं, तो हिटलर बनने में क्या दिक्कत है।

ध्यान रहे, हम हंसते हैं तो हम फालो करते हैं। हमें खयाल नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। हमसे सिर्फ करवाया जा रहा है, चारों तरफ जो कुछ हो रहा है हम वही करने लगते हैं। इस पर बहुत प्रयोग किये गये हैं। ध्यान में मैं देखता हूं निरंतर कि ध्यान में अगर एक आदमी खांसा तो दस मिनिट के भीतर पचास आदमी खांसेंगे। एकदम से सिलसिला शुरू हो जायगा। यह सब इमीटेट कर रहे हैं ऐसा नहीं, ऐसा नहीं कि ये जान-जानकर कर रहे हैं। अभी यहां बैठे हैं आप। एक आदमी पेशाब करने चला जाय, पन्द्रह मिनट में सारे लोग पेशाब करने की जाने की हालत में हो जायेंगे, जिनको खयाल भी नहीं था। इमीटेट करने की एक वृत्ति है हमारी। कोई कुछ करेगा तो एकदम से खयाल आ जाता है कि यह करने योग्य है। बस खयाल आया कि क्रिया शुरू हो जाती है।

तो मैं जो कह रहा हूं वह यह कह रहा हूं कि हमारा छोटा-छोटा काम इस जगत में बड़े से बड़े काम के पीछे आधारभूत होता है। **अगर तुमने बिना समझे-बूझे ताली बजाई तो तुम एक ऐसी दुनिया बनाओगे जो बिना समझे-बूझे निर्मित होगी।** इतना छोटा-सा कृत्य भी इतना काम करेगा, इसका बोध अगर तुम्हें हो जाय, तो तुम एक ढंग से जीना शुरू करोगे जो एक बदला हुआ ढंग होगा और जिस दिन तुम बदलकर देखना शुरू करोगे, तुम बहुत हैरान हो जाओगे कि लोग बिलकुल मशीनों की तरह काम कर रहे हैं। जिस दिन तुम होश से ताली बजाओगे उस दिन तुम हैरान हो जाओगे कि बाकी लोग क्या कर रहे हैं। तब तुम लोगों को देखकर बहुत चौंकोगे कि यह क्या हो रहा है। बिलकुल हिप्नोटाइज्ड-सी, सम्मोहित-सी सारी दुनिया चली जा रही है, बेहोश सब होता चला जा रहा है। इस बेहोशी को तोड़ने वाले तुम्हीं को बनना होगा, नहीं तो कौन तोड़ेगा? इतना पक्का है कि यदि एक आदमी तोड़ता है, तो वह नई तरह की धाराएं शुरू कर देता है, क्योंकि तुम बिना धाराएं पैदा किए तो रह ही नहीं सकते। समझ लें कि पचास आदमी तालियां बजा रहे हैं और एक आदमी ने ताली नहीं बजाई हो तो वह बैठा रह गया, तो तुम यह मत समझ लेना कि उसका भी परिणाम नहीं हो रहा है। उसके बगल वाले की ताली कमजोर बजेगी। उसका बगल वाला बगल वाले की ताली देखकर बजा रहा था, लेकिन इस तरफ एक आदमी ताली नहीं बजा

रहा था, इसकी ताली की चोट कम हो जायगी। इस आदमी का भी असर होने वाला है, क्योंकि अगर बगल वाले की ताली का असर हो रहा है तो गैर-ताली वाले का नहीं होगा ? होगा। वह भी होने वाला है और अगर उसके पीछे भी कोई ताली नहीं बजा रहा हो और आगे भी ताली नहीं बजा रहा हो, तो हो सकता है वह भी चुप रह जाय, वह सोचे, ताली बजाने जैसी नहीं है।

हम जो भी कर रहे हैं वह सब परिणामकारी है और हमें जिम्मेवार अपने को मानना ही चाहिए। हैं हम जिम्मेवार और बड़ी बात तो यह है कि इसका परिणाम क्रांति होता है। क्योंकि जब तुम अपने को जिम्मेवार मानोगे तो तुम्हें बदलना ही पड़ेगा और जब तुम बदलोगे तो दुनिया बदलेगी, क्योंकि तुम उतने ही बड़े हिस्से हो दुनिया के, जितना कोई और है। तुम कोई छोटे हिस्से नहीं हो और जो हमें बहुत बड़े लोग दिखायी पड़ते हैं, **ये बहुत छोटे-छोटे लोगों की ताकत से बड़े होते हैं। इसलिए मेरा कहना है कि जो छोटे आदमियों की ताकत पर बड़ा हो जाता है, वह बहुत बड़ा नहीं हो सकता। यह हमें दिखता है कि हिटलर बहुत बड़ा आदमी है, लेकिन किन लोगों की ताकत पर वह बड़ा आदमी है ? उन लोगों की जिन्होंने ताली बजा दी है और वह सब छोटे आदमी हैं।**

मैं कल या परसों उर्दू के किसी कवि की दो पंक्तियां देख रहा था। शायद वह पंक्तियां आपके खयाल में हों, मुझे खयाल नहीं। उनमें उसने कहा है कि जिन्दगी भर गधे ताली बजाएं इसके लिए हम मेहनत करते रहें। कहना उसका यह है कि हमारी हालत उनसे ज्यादा नहीं हो सकती है। हम मेहनत इसलिए करते रहे कि एक अच्छी कविता लिखें और दस आदमी ताली बजा दें, तो हमारी हालत उनसे बहुत अच्छी नहीं हो सकती। उनकी ताली पर तो हम निर्भर हैं। उनकी ताली पर तो हम जिन्दा हैं। उनकी ताली तो हमारी आत्मा है, वह न बजायी जाये तो गए।

वे, जिनको तुम बहुत बड़े लोग कहते हो वे बहुत छोटे-छोटे लोगों की छाती पर खड़े होकर बड़े लोग हैं, और छोटे लोग जिम्मेवार हैं उनको छाती पर खड़ा रखने में, नहीं तो वह कह दें कि नीचे उतर जाओ, बात खत्म हो जाती। इस छोटे होने का खयाल छोड़ देना। **न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है। हम सब शक्तियों के पुंज हैं। हम उसका कैसे उपयोग करते हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है।** हम सब शक्ति पुंज हैं और बड़े अभूतपूर्व शक्तिपुंज हैं। लेकिन अगर एक दफे यह खयाल बैठ गया कि हम छोटे हैं और बड़े लोगों ने

यह खयाल बिठाया है, नहीं तो इसके बिना वे बड़े नहीं हो सकते। इसलिए सारा बड़प्पन जो है दुनिया का, वह अधिक लोगों का छोटे होने से है—यह खयाल पिलाकर ही खड़ा होता है, नहीं तो खयाल खड़ा नहीं हो सकता। दुनिया में बड़े होने का जो राज है, उस राज का बुनियादी आधार इस पर रखा हुआ है कि अधिक लोगों को यह समझना ही पड़ेगा कि तुम बिलकुल छोटे आदमी हो—तुम कुछ भी नहीं कर सकते हो—तुम कुछ हो ही नहीं; तुम तो इतना ही कर सकते हो कि किसी के अनुयायी बनो, किसी के शिष्य बनो, किसी के पीछे जाओ, किसी के पैर पकड़ो—यही तुम कर सकते हो। यह समझाया गया है बहुत दिनों तक। उसका परिणाम भी हो गया है, बहुत लोगों ने यही मान लिया है। मजा यह है कि वह छोटे-छोटे चेला जो कुछ भी नहीं हैं—उनके बल पर एक बड़ा आदमी एक बड़ा गुरू हो जाता है, हजारों साल तक पूजा जाता है। और अगर तुम इसका बल देखने जाते हो, तो वह छोटे-छोटे आदमी मिलेंगे जो कुछ भी नहीं थे, जो उसको बल दिए हुए थे। इतना तो बल है उनमें कि एक आदमी को बड़ा बनाते हैं, बल खींच लें तो यह आदमी एकदम सामान्य हो जाय।

अच्छी दुनिया में बड़े आदमी और छोटे आदमी नहीं होंगे, अच्छी दुनिया में आदमी होंगे। बड़ा और छोटा रुग्ण एवं बीमार दुनिया का लक्षण है। वहां महापुरुष भी हैं और क्षुद्र पुरुष भी हैं, महात्मा भी हैं और हीन आत्मा भी हैं। यह बीमार दुनिया का लक्षण है। अच्छी दुनिया में आदमी होंगे और अपने अपने ढंग से जियेंगे, किसी की छाती पर सवार होने का कोई सवाल नहीं है। और तुम अपने ढंग से जियो बस और तुम जैसा समझो कि इससे सुख है मुझे, दूसरे को आनन्द। हम एक ऐसी दुनिया बना सकें, अपने को एक मौका मिलता है सत्तर साल के एक आदमी को दुनिया बनाने का, उसको चूक नहीं जाना चाहिए। और कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उसका परिणाम व्यापक हो सकता है।

तो मेरा मानना यह है कि जब दुनिया को दुखी करने का इतना व्यापक परिणाम हो सका है, तो दुनिया को सुखी करने में और व्यापक हो सकता है, क्योंकि मूलतः सबकी आकांक्षा सुख के लिए है। अगर दुनिया को 'अग्ली' और कुरूप बनाने में हम उपयोगी हो सके हैं, तो सुन्दर बनाने में क्यों नहीं हो सकते, जबकि सबकी आकांक्षा सुन्दर बनने की है। छोटे का खयाल ही गलत है। कुछ लोगों ने पैदा किया है, क्योंकि उनको बड़े होना है।

मैं राजस्थान की एक लोक-कथा पढ़ रहा था। एक ठाकुर साहब हैं, गांव का नाई उनसे मिलने आया। नाई नीचे बैठा है, ठाकुर साहब ऊपर बैठे हैं। फिर नाई ने उनको निमन्त्रण दिया है। नाई बूढ़ा है और ठाकुर जवान। नाई नीचे बैठ गया है, स्वाभाविक है नीचे बैठना ही चाहिए नाई को। ठाकुर साहब ऊपर तख्त पर बैठे रहे हैं। नाई ने निमन्त्रण दिया है कि मैं तो हमेशा आता हूं, कभी आप मेरे घर आयें। ठाकुर साहब उसके घर गये। दहलान पर उसने दरी बिछा दी है। ठाकुर साहब उस पर बैठ गये हैं और नाई दहलान से नीचे उतर कर सड़क में जाकर बैठा। तब ठाकुर साहब ने कहा : "नहीं ! नहीं ! यह क्या करते हो ! ऐसा करोगे तो मैं भी वहीं आ जाऊंगा, आओ बैठो।" उसने कहा : "नहीं, नहीं, हम नाई आप ठाकुर। हम छोटे आदमी आप बड़े आदमी।" उस ठाकुर को कुछ व्यंग लगा है तो वह उतर कर नीचे आ गया है। नाई ने कहा : "ऐसा मत करिये। ऐसा करेंगे तो मुझे एक गड्ढा खोदना पड़ेगा, फिर मुझे गड्ढे में ही बैठना पड़ेगा।" उस ठाकुर ने कहा : "अगर मैं गड्ढे में आकर बैठ गया तो ?" उस नाई ने कहा कि फिर जो मुझे करना चाहिए और बहुत दिनों से नहीं किया वह मैं करूंगा।" ठाकुर साहब ने कहा, क्या करोगे ? उसने कहा, मैं गड्ढे को पूर कर आराम से सो जाऊंगा जो मुझे बहुत दिन से करना चाहिए था और मैंने अभी तक नहीं किया, फिर मैं वह करूंगा। छोटे आदमी ने बहुत दिन से नहीं किया वह काम। मजा यह है कि उसको नीचे बैठालना जरूरी है नहीं तो बड़ा आदमी कहां टिकेगा, कहां जायेगा ? सारा इन्तजाम किया है बड़े होने का और बड़ा होना कोई मैनेज्ड है ? उसकी सारी व्यवस्था करनी पड़ती है और व्यवस्था न हो, तो बड़ा आदमी फिसल जायगा। बड़ा आदमी फासला रखेगा, निकट न आने देगा।

हिटलर के कंधे पर कोई हाथ नहीं रख सकता था। इतना निकट कोई भी नहीं था, इतना मित्र कोई भी न था कि उसके कंधे पर हाथ रखे और ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं था जो उसका नाम सीधा ले सके। और जब भी उससे कहा गया, तो उसने कहा कि यह संभव ही कैसे है। इसलिए उसने शादी नहीं की। आखिर उम्र में शादी की, घंटे भर पहले मरने के। एक लड़की से उसका प्रेम था, लेकिन वह प्रेम जैसा हिटलर का हो सकता था वैसा ही था। वह लड़की उसके पास थी, लेकिन उसका बिलकुल आज्ञा का काम था। प्रेम भी आज्ञा की बात थी उसके। हिटलर अपने आफिस जा रहा है, उस लड़की

ने कहा कि मेरी मां बीमार हैं, मैं उससे मिल आऊं ? उसने कहा, नहीं और वह अपनी गाड़ी में बैठकर चला गया। लड़की ने सोचा कि वह चार बजे लौटेगा, पास ही तो उसकी मां है, जाकर देखकर लौट आयेगी। वह गई और देखकर लौट कर चली आई। हिटलर आया दफ्तर से। नीचे उसने संतरी से पूछा कि गई तो नहीं थी ? उसने कहा, गई थी। संतरी के हाथ से बंदूक लेकर ऊपर गया और उसे गोली मार दी। फिर उसने पूछा नहीं उससे कि गई क्यों। गया और गोली मार दी उसने जाकर पहले। असंभव है कि हिटलर को कोई ना कह सके, हिटलर को कह दे नहीं और फिर वह चला जाय, असंभव है। फिर एक स्त्री उसको बारह साल तक प्रेम करती रही, लेकिन उसने शादी नहीं की। आधी रात थी, जिस दिन बर्लिन पर बम गिर रहा था उसके सामने, जहां वह नीचे छिपा था तलघरे में, सामने दुश्मन गोलियां चलाने लगा। तब उसने खबर भिजवाई कि कहीं से एक पादरी को पकड़ लाओ और जल्दी से शादी कर दो। उसके मित्रों ने कहा : "अब क्या मतलब है इस शादी का ?" उसने कहा : "अब कोई भय नहीं है। अब मरना ही है, अब कुछ नहीं है।" तलघरे में पांच-छः लोग मौजूद थे जहां हिटलर की शादी हुई। शादी के बाद पादरी बाहर गया और फिर दोनों ने मिलकर गोली मार ली। तो शादी के बाद जो काम किया उसने, वह यह था हनीमून। पर उसने कहा, अब कोई भय नहीं है, अब कर सकते हैं। मैं इतना करीब किसी को भी नहीं ला सकता हूं। कि जो कंधे पर हाथ रख सके, जो किसी बात को इन्कार कर सके, जो मित्रता जतला सके, जो बराबरी दिखा सके—मतलब यह है; बराबरी दिखाना तो बहुत असंभव है।

इसलिए बड़े आदमी की पत्नी होना बहुत कष्टपूर्ण है, बड़े आदमी का मित्र होना बड़ा कष्टपूर्ण है, क्योंकि बड़े आदमी के आप फालोवर हो सकते हैं, या दुश्मन हो सकते हैं; मित्र नहीं हो सकते। मित्रता का कोई सम्बन्ध ही नहीं है बड़े आदमी से और मजा यह है कि अगर बड़ा आदमी आपको मित्र बनाये तो आप उसको बड़ा न समझेंगे। ऐसा नहीं कि हिटलर ही कसूरवार है। जो मैं कह रहा हूं, वह यह कि हम सदा जिम्मेवार हैं। अगर हिटलर आपको कंधे पर हाथ रखने दे, तो हिटलर गया। वह फौरन बड़ा आदमी न रहा, बात खत्म हो गई। वह जिस चपरासी की मैं बात कर रहा था कि मैंने देखा और लोगों को कहा, तो उन्होंने कहा, वह चपरासी है। मैं उससे आदर से बोलता था। उसका नाम द्वारका था। तो मैं द्वारका जी ही उसको कहता

था। तो वह मुझे पानी लाकर नहीं देता था। ऐसे आदमी की क्या फिक्र करनी जो चपरासी को द्वारका जी कह रहा है। उससे मैंने कहा कि द्वारका जी पानी ले आना। वह सुनता हुआ चला जा रहा है। लेकिन जो उसको कह रहे हैं कि 'अबे द्वारका', वह और ये दोनों सहभागी हैं इस मामले में। यानी आदमी भी तभी सुनने को राजी होगा जब उससे 'अबे' कहा जाय, इसको 'जी' लगाइये तो बात खत्म हो गई। वह पहले मुझसे बहुत हैरान हुआ। चपरासी को 'जी' कह रहे हैं, मतलब चपरासी से भी गये बीते आदमी हैं, इज्जत की बात ही न रही, खत्म हो गई बात। हिटलर अगर कंधे पर हाथ रखने दे तो गया, मर गया उसी वक्त। यानी उसमें हिटलर ही जिम्मेवार नहीं है, उसमें हम भी जिम्मेवार हैं।

तुम अपने दुख से भी इसीलिए पीड़ित हो कि तुम दुनिया का दुख नहीं देख पा रहे हो। अगर तुम दुनिया के दुख देख पाओ तो तुम्हारे दुख बड़े छोटे रह जायेंगे। इतने छोटे कि उनसे पीड़ित होना बिलकुल बेमानी मालूम पड़ेगा। उसका जो कारण है वह यह नहीं कि बहुत कम दुख है तुम्हारे पास; उसका कारण यह है कि तुम्हारे पास और दुख ही नहीं हैं जिनसे तुम तुलना कर सको।

जीसस को जिस दिन शूली लगी उस दिन एक आदमी के दांत में दर्द था रात भर। उस गांव में उसकी पत्नी ने कई बार कहा उससे रात में कि आज मुझे नींद नहीं आती; कल सुबह जीसस को शूली लग जायगी। उसने कहा : "भाड़ में जाने दो जीसस को। मेरे दांत में दर्द है इसकी तो तुम्हें फिक्र नहीं है, जीसस की फिक्र में लगी हो। मैं मरा जा रहा हूं, करवट बदल रहा हूं, दवा ले रहा हूं, दर्द ठीक ही नहीं होता।" सुबह वह उठकर बैठ गया है। जो भी निकलता है वह जीसस की बात करता है और कहता है, सुना है तुमने कि जीसस को शूली लग जायगी। वह सुनता ही नहीं है। कहता है कि रात भर सोया नहीं। दवा भी काम नहीं कर रही है, यह भी करता हूं, वह भी करता हूं, दांत का दर्द नहीं जाता। फिर तो जीसस शूली लिये हुए निकले दरवाजे से। लोगों ने कहा, देख तो। उसने कहा : "क्या देखूं ! दर्द इतना ज्यादा है कि रात भर सो नहीं सका, दो रात से नींद नहीं आई, कोई दवा काम नहीं करती।" अब जिसका दांत दुख रहा हो वह ठीक ही कह रहा है कि जीसस को शूली लग रही हो तो लग रही हो, इससे क्या लेना देना है। दांत में तकलीफ है यह बड़ी बात है। लेकिन मेरा मानना है कि काश ! वह

आदमी भी जीसस की शूली देख सके, तो वह दांत का दर्द चला जाय। मेरा कहना यह है कि वह दांत का दर्द दिखाई इसलिए पड़ रहा है कि वह आदमी के देखने का ढंग ही बहुत गलत है। इधर दुनिया में इतनी पीड़ायें हैं, मेरी अपनी समझ यह है कि बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट जैसे लोगों को जो कोई पीड़ा नहीं है, दुख नहीं है—इसका कारण यह नहीं है कि उनको दुख नहीं है, पीड़ा नहीं है—उसका कुल कारण यह है कि उन्हें इतना दुख दिखाई पड़ रहा है, इतनी पीड़ा दिखाई पड़ रही है कि बेमानी है यह बात कि उन्हें अपना दुख दिखाई पड़ रहा है। इसका एहसास ही चला गया है एक सीमा पर आकर। यह बात ही बेमानी है कि मैं अपने दांत के दर्द की बात करूं। जहां दर्द ही दर्द है, पीड़ा ही पीड़ा है दांत के दर्द की बात एकदम बेहूदगी है। अगर दुनिया का दुख तुम्हें दिखाई पड़ने लगे, तो तुम्हारा दुख एकदम विलीन हो जायगा। इतना छोटा लगेगा कि आप स्वयं से कहेंगे कि क्या इसको भी दुख कहना चाहिए ?

अभी मैं जिस कम्पार्टमेंट में बैठकर आया तो मेरे साथ एक सज्जन थे। एयरकंडीशंड में सब सुविधा है, लेकिन भाग्य से वह डिब्बा चक्के के ऊपर आ गया। वह जो हमारा कम्पार्टमेंट है उसके नीचे चाक है। वह थोड़ा धक्का-मुक्की करता रहा, कम्पार्टमेंट हिलता रहा। पूरे बीस घंटे उनके यही तकलीफ में बीते। कितनी बार उन्हें इसकी पीड़ा हुई है कि वह कम्पार्टमेंट चाक के ऊपर आ गया। चपरासी से बुलाकर पूछा है कि दूसरा कम्पार्टमेंट नहीं मिल सकता, यह नहीं हो सकता ? अब इस बड़ी दुनिया में इतनी पीड़ाएं हैं, उसमें तुम्हारा डिब्बा अगर एक चाक के ऊपर आ गया जबकि किसी न किसी का डिब्बा चाक पर आयेगा ही। चाक नीचे है करोगे क्या। लेकिन उसका बोध ही नहीं है।

इतना बड़ा जो फैलाव है जगत का उसका बोध ही नहीं है। चेतना यहां सीमित हो गई है। वह उस डिब्बे में बन्द है, उस चाक से जुड़ी है। तो ठीक है, वह आदमी बहुत दुख झेल लेगा, ऐसा नहीं कि वह कम झेल रहा है। वह बहुत झेलता है, लेकिन झेलने के लिए वही जिम्मेवार है। वह अगर विराट के संदर्भ में उसको देखे तो बात हंसने जैसी लगेगी और अगर वह अपने ही संदर्भ में देखेगा और कोई संदर्भ ही नहीं है, तो फिर बहुत बड़ी लगेगी।

तो तुम्हारा दुख, तुम्हारी पीड़ा बहुत छोटी हो सकती है अगर तुम्हें विराट का दुख और पीड़ा दिखाई पड़ जाय। तुम्हारे पास पहली दफा मेजरमेंट

भी तो होगा न, कि दुख क्या है। वह हमारे पास है ही नहीं। हम सब अपने-अपने डिब्बे में बन्द हैं, वहीं जी रहे हैं। उधर से थोड़े बाहर निकलकर देखना चाहिए।

▬▬▬

सत्यम् शिवम् सुन्दरम्

मानव के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे रजनीश हरे
धरती के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे रजनीश हरे

अब धरम-करम की बात नहीं, पंथों ने सबको घेरा है
अपनी-अपनी दीवार बना, सब कहते तेरा-मेरा है
सब एक ब्रह्म है—प्रेम प्रभू, जगदीश हरे रजनीश हरे

सब धर्म-मर्म की बात करें, फिर भी वे जुदा-जुदा क्यों हैं
अब प्रेम-पंथ बनकर आये, जगदीश हरे रजनीश हरे

भारत की गौरव गरिमा ले, अध्यात्म-सूर्य को चमकाया
है अखिल ब्रह्म में रमा हुआ, जगदीश हरे रजनीश हरे

हमने तुमको पहचान लिया, तुमने भी हमको जान लिया
अब 'मैं' और 'तू' का भेद मिटा, जगदीश हरे रजनीश हरे

तुम वीर, बुद्ध, पैगम्बर हो, शिव, ईसा, कृष्ण जिनेश्वर हो
इस सृष्टि के तुम अधीश्वर हो, जगदीश हरे रजनीश हरे

हम हैं—अपूर्ण, तुम पूर्ण प्रभू, सर्वज्ञ मुक्त संन्यासी हो
तुम सत्यम् शिवम् सुंदरम् हो, जगदीश हरे रजनीश हरे

जग की जड़ता को दूर किया, जीवन में जीना सिखलाया
पुरजोर स्वराज्यानंद कहें, जगदीश हरे रजनीश हरे

भारत के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे, रजनीश हरे
जगती के प्राण पुकार रहे, जगदीश हरे रजनीश हरे
मानव के प्राण .....

—स्वामी स्वराज्यानन्द समर्थ
प्रेमनीड, पिपरिया (म. प्र.)

कृष्ण और गीता

— निश्चल ध्यान-योग —

भगवान श्री द्वारा 'गीता-ज्ञान-यज्ञ' के अंतर्गत शिवाजी पार्क, बम्बई में दिनांक ९-९-'७२ को दिया गया एक उद्‌बोधन ।

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति चरमन्ति च ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहयज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

(श्रीमद्‌भगवद्‌गीता, दसवां अध्याय, श्लोक—९, १० और ११)

भाष्यः—और वे निरन्तर मेरे में मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले (वासुदेव के लिये ही जिन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया है उनका नाम है "मद्‌गतप्राणा") भक्तजन सदा ही मेरी भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में मेरे प्रभाव को जनाते हुए तथा गुण और प्रभाव सहित मेरा कथन करते हुए ही सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेव में ही निरंतर रमण करते हैं ।

उन निरंतर मेरे ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को, मैं वह तत्त्वज्ञान रूप योग देता हूं कि जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

और हे अर्जुन ! उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अन्तःकरण में एकी भाव से स्थित हुआ, अज्ञान से उत्पन्न हुए अन्धकार को प्रकाशमय तत्वज्ञान रूप दीपक द्वारा नष्ट करता हूं।

भगवान श्री :

भविष्य की मृगतृष्णा में वर्तमान की आहुति

एक दौड़ता हुआ मन, एक ठहरा हुआ मन ! दौड़ता हुआ मन निरंतर ही जहां होता है, वहां नहीं होता। ऐसा समझें कि दौड़ता हुआ मन कहीं भी नहीं होता। दौड़ता हुआ मन सदा ही भविष्य में होता है— आज नहीं होता, अभी नहीं होता, यहां नहीं होता। कल आगे कहीं और कल्पना में सपने में कहीं दूर भविष्य में होता है। और भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है, अस्तित्व है वर्तमान का, अभी का, इसी क्षण का। जब मैं कहता हूं इसी क्षण का, तो ये कहने में वह वर्तमान का क्षण जा चुका। कितनी भी दूर हुए पहिले वर्तमान के क्षण को चूक जाते हैं। जानने में भी जितना समय लगता है उतने में वर्तमान जा चुका होता है। एक क्षण हमारे हाथ में है अस्तित्व का, लेकिन मन सदा वासनाओं में, भविष्य में होता है।

भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं, इसलिये दौड़ता हुआ मन कहीं होता ही नहीं। जहां हो सकता है वहां होता नहीं, और जहां हो ही नहीं सकता वहां होता है।

वर्तमान में हो सकता था, लेकिन वर्तमान में दौड़ता हुआ मन नहीं होता। आप वर्तमान में दौड़ नहीं सकते, जगह नहीं है, 'स्पेस' नहीं है। दौड़ने के लिए भविष्य का विस्तार चाहिए, वासना के लिए अनन्त विस्तार चाहिए, वर्तमान का क्षण बहुत छोटा है। उस छोटे से क्षण में आपकी वासना नहीं समा सकेगी। ये जो दौड़ता हुआ मन है, ये दौड़ता रहता है—कहीं भी ठहरने का इसे उपाय नहीं है; जहां ठहर सकता है वर्तमान में, वहां ठहरता नहीं। और भविष्य तो है ही नहीं, वहां सिर्फ दौड़ सकता है— उसे ठहरने की सुविधा नहीं। ये दौड़ता हुआ मन ही हमारी बीमारी है, रोग है।

● वर्तमान का अस्तित्व क्षणिक है और हमारे हाथ में हमेशा क्षण ही होता है अस्तित्व का, किंतु मन भविष्य की वासनाओं में लिप्त होता है।

अगर अधार्मिक आदमी की हम परिभाषा करें, तो वो परिभाषा ऐसी नहीं है कि जो ईश्वर को न मानता हो वह अधार्मिक; जैसे बहुत से व्यक्ति हुए हैं जो ईश्वर को नहीं मानते, वो अधार्मिक हैं। महावीर, बुद्ध ईश्वर को नहीं नहीं मानते; पर परम धार्मिक हैं, उनकी आस्तिकता में रत्ती भर भी संदेह नहीं। **और अगर बुद्ध, महावीर की धार्मिकता में भी संदेह हो, तो इस पृथ्वी पर कोई भी आदमी धार्मिक नहीं हो सकता।** अधार्मिक आदमी उसे ही नहीं कह सकते, जो ईश्वर को न मानता हो; अधार्मिक आदमी उसे भी नहीं कह सकते, जो वेद को न मानता हो, बाइबिल को न मानता हो, कुरान को न मानता हो। अधार्मिक आदमी केवल उसे कह सकते हैं—जिसके पास केवल दौड़ता हुआ मन हो। ठहरे हुए मन का जिसे कोई अनुभव नहीं, फिर वो कुछ भी मानता हो; ईश्वर को मानता हो, आत्मा को मानता हो, मानता हो वेद को, कुरान को, बाइबिल को मानता हो, अगर दौड़ता हुआ मन है तो धार्मिक नहीं है। और फिर चाहे कुछ भी न मानता हो, लेकिन ठहरा हुआ मन है, तो वो आदमी धार्मिक है; **क्योंकि मन जहां ठहरता है वहीं तत्क्षण उस परम सत्ता से सम्बन्ध जुड़ जाता है। हम उसे क्या मान लेते हैं, यह गौण बात है।** कोई उसे ईश्वर कहे ये उसकी मर्जी और कोई उसे आत्मा कहे ये उसकी मर्जी और कोई उसे कुछ भी न मानना चाहे ये भी उसकी मर्जी और कोई उसके सम्बन्ध में चुप रह जाये ये भी उसकी मर्जी; कोई उसे शून्य कहे, कोई उसे मिट जाना कहे, कोई उसे पूरा हो जाना कहे—ये उसकी मर्जी की बात है। **लेकिन जहां मन ठहरा, वहीं आदमी धार्मिक हो जाता है।**

निश्चल ध्यान-योग की प्रक्रिया

इस मन को ठहराने के लिए कल के सूत्र में कृष्ण ने जो शब्द उपयोग किया है—उसे हम थोड़ा ठीक से समझ लें, तो इस सूत्र में प्रवेश आसान हो हो जावेगा। समझना कहना ठीक नहीं, क्योंकि हम समझ तो बहुत बार लेते हैं फिर भी कोई समझ पैदा नहीं होती। शायद उचित होगा कहना कि उस सूत्र को थोड़ा कर लें, तो ये समझ में आ जावेगा।

कृष्ण ने कहा है : **"निश्चल ध्यान-योग को जो उपलब्ध होता है, वो मेरे में एक ही भाव से ठहर जाता है।"**

● मन का क्षणिक ठहराव ही परम सत्ता से हमें सम्बन्धित कर सकता है।

निश्चल ध्यान-योग क्या है ? — वो मैंने कल आपसे कहा। लेकिन कैसे आप उसे कर सकते हैं—वो मैं आज आपसे कहना चाहूंगा। 'क्या है'—ये एक बात है; 'कैसे किया जा सकता है' — ये दूसरी बात है। निश्चल ध्यान-योग का अर्थ समझ लेना एक बात है, निश्चल ध्यान-योग की प्रक्रिया में उतर जाना बिलकुल दूसरी बात है। और प्रक्रिया में उतरे बिना कोई भी जान नहीं पायेगा, समझ कितना ही ले। इसलिए बहत बार जिन्हें हम समझदार कहते हैं, उनसे नासमझ आदमी खोजने मुश्किल होते हैं। वे सब समझते हैं और जानते कुछ भी नहीं। सच तो ये है कि वे इतना समझते हैं कि सोचते हैं, अब जानने की कोई जरूरत नहीं। शब्द का उनके पास भंडार हो सकता है, अनुभव का उनके पास कण नहीं होता। अनुभव का सम्बन्ध ध्यान क्या है, उसे समझने से नहीं, ध्यान कैसे होता है—उसमें उतर जाने से है। ध्यान एक अनुभूति है। ध्यान के सैकड़ों प्रकार हैं और ध्यान के सैकड़ों मार्गों से लोग ध्यान को उपलब्ध हो सकते हैं।

निश्चल ध्यान-योग की तरफ पहुंचने के लिए भी सैकड़ों रास्ते हैं; और पृथ्वी पर अनेकानेक रास्तों से चलकर लोग लक्ष्य को उपलब्ध हो गए हैं—जिसे हम मन का ठहर जाना कहते हैं। एक छोटी-सी सरल प्रक्रिया मैं आपसे कहूंगा, जिसे आप कर सकें। और आपको निश्चल मन की थोड़ी-सी झलक और छाया भी मिलनी शुरू हो जाये, तो आपकी जिन्दगी रूपान्तरित होने लगेगी। एक नये आदमी का जन्म आपके भीतर हो जायेगा; पुराना आदमी बिखरने लगेगा। एक नई चेतना, एक नया केन्द्र, देखने का एक नया ढंग, जीने की एक नई प्रक्रिया, होने की एक नई व्यवस्था आपके भीतर पैदा हो जावेगी। जैसे अचानक अंधे की आंख खुल जाय, यदि अचानक बहरे को कान मिल जाय, यदि अचानक मरा हुआ पुनः जीवित हो जाय, ठीक ध्यान के योग से—ऐसी ही व्यापक क्रांतिकारी घटना घटती है।

मन तो एक अंडे की तरह है। अन्डा जब टूटता है, तो पक्षी पंख फैलाकर आकाश में उड़ता है; और अंडा अगर रुका रह जाये, तो जो अंडा पक्षी को सम्हालने के लिए था, उसकी सुविधा और व्यवस्था के लिए था, वही उसके लिए कब्र बन जावेगा। अंडे को टूटना चाहिए। मन जरूरी है। आदमी बिना मन के पैदा वैसा ही होगा, जैसे बिना अन्डे के कोई पक्षी पैदा हो, तो मुश्किल में पड़ जायेगा। मन बिलकुल जरूरी है, एक सीमा तक साथी है, एक सीमा के बाद दुश्मन हो जाता है। एक सीमा तक सहारा है, एक सीमा के

बाद कारागृह हो जाता है। और हमारा मन करीब-करीब कारागृह है। अनेक जन्मों से आप उस मन को लेकर चल रहे हैं, जो हमें कभी का तोड़ देना चाहिए था। लेकिन अंडे के भीतर का छिपा हुआ जो पक्षी है, उसे भी तो कुछ पता नहीं है आकाश का, और उसे भी तो डर समाया हुआ है कि अन्डे को अगर तोड़ दूं तो मेरा क्या होगा ? वही तो मेरी सुरक्षा है, वही मेरी आड़ है, उसी से तो मैं बचा हूं, वही मेरा घर है। स्वाभाविक है।

क्या मन को ही हम अपनी सुरक्षा मानकर जीते हैं ? इसीलिए अगर आपके शरीर को कोई बीमार कह दे, तो आप नाराज नहीं होते और अगर कोई कह दे कि आप दुबले दिखाई पड़ते हैं, बीमार मालूम होते हैं, तबियत खराब है तो सहानुभूति मालूम पड़ती है, लगता है आदमी मित्र है। लेकिन कोई आपसे कह दे कि आपका मन बीमार मालूम पड़ता है, कुछ मन में ज्वर मालूम पड़ता है, मन में कुछ विक्षिप्तिता दिखाई पड़ती है, पागलपन मालूम पड़ता है; तो फिर ये आदमी मित्र नहीं मालूम पड़ता है, ये दुश्मन मालूम होता है; क्योंकि शरीर को हम अपने से दूर मान पाते हैं, लेकिन मन के साथ हम अपने को एक ही मानते हैं। इसलिए कोई कहता है कि आपका शरीर बीमार है, तो ये नहीं कहता कि आप बीमार हैं, आपका शरीर बीमार है। लेकिन जब कोई कहता है कि आपका मन रुग्ण है, तो आपको तत्काल लगता है कि इसका मतलब हुआ—मैं पागल हूं, मैं रुग्ण हूं। मन के साथ हमारा तादात्म्य, आइडेन्टिटी गहरी है। हमने मन के साथ अपने को एक समझ रखा है। और इस तरह पक्षी अंडे के बाहर होने में असुविधा पाता है; उपाय ही नहीं रह जाता। अंडे को ही पक्षी समझे अपना होना, तो कठिनाई हो जाती है।

ध्यान मन को तोड़ने का नाम है, या कहें, मन के पार हो जाने का नाम है।

गर्भस्थ शिशु-स्थिति सदृश ध्यान-स्थिति

एक छोटी प्रक्रिया आपसे कहूं जिससे आप अंडे के बाहर आ सकते हैं। अगर आपने चित्र देखे हों बच्चों के उनके मां के पेट में, गर्भ में। मां के पेट में बच्चा जिस हालत में होता है गर्भ में, उस अवस्था में मनोवैज्ञानिक कहते हैं, योग की गहरी खोज कहती है कि मां के पेट में जब बच्चा होता है, जिस आसन में—उस समय बच्चों के पास न्यूनतम मन होता है, 'न' के बराबर मन होता है, कह सकते हैं कि होता ही नहीं; और बच्चे की चेतना मां के पेट में मस्तिष्क में नहीं होती और न ही बच्चे की चेतना हृदय में होती। शायद

आपको पता नहीं कि मां के पेट में बच्चे का हृदय नहीं धड़कता। नौ माह बच्चा बिना हृदय की धड़कन के होता है, इसलिए एक बात और सोच लेना कि हृदय की धड़कन से जीवन का कोई सम्बन्ध नहीं; क्योंकि बच्चा बिना हृदय की धड़कन के नौ महीने जिन्दा रहता है। जीवन और गहरी बात है। आपसे कोई पूछे कि आपकी चेतना कहां है, तो सिर पे हाथ जायगा। चेतना मन में केन्द्रित होती है तो सिर केन्द्र हो जाता है, जब प्रेम में केन्द्रित होती है, भाव में केन्द्रित होती है तो हृदय केन्द्र हो जाता है; इसलिए प्रेमी हृदय पर हाथ रखेगा और गणित को समझाने वाला आदमी गणित न बने तो सिर को खुजलायेगा, हृदय पर हाथ नहीं रखेगा, हाथ जायेगा ही नहीं हृदय पर। और प्रेमी अगर प्रेम में पड़ा हो और सिर पर हाथ रखे तो बहुत बेहूदा मालूम पड़ेगा, सिर से कोई सम्बन्ध नहीं है।

चेतना जब बहाव में होती है तो हृदय केन्द्र होता है; और चेतना जब विचार में होती है तो मस्तिष्क केन्द्र होता है।

लेकिन मस्तिष्क बहुत बाद में विकसित होता है और हृदय नौ महीने बाद धड़कता है। उसके भी पहले चेतना जिस केन्द्र पर होती है, वह नाभि है। बच्चा मां से नाभि से जुड़ा रहता है। **जीवन का पहिला अनुभव बच्चे को नाभि पर होता है।**

जिन लोगों को मन के पार जाना है, उन्हें हृदय और मस्तिष्क दोनों से उतरकर नाभि के पास वापस लौटना होता है। अगर वो फिर से अपनी चेतना को नाभि के पास अनुभव कर सकें तो मन तत्क्षण ठहर जावेगा। तो इस ध्यान की प्रक्रिया में—जिसे मैं निश्चल ध्यान-योग की तरफ एक विधि कहता हूं— दो बातें ध्यान में रखनी जरूरी हैं। जैसा कि सूफी फकीरों को अगर आपने देखा हो—प्रार्थना करते, या मुसलमानों को अगर आपने नमाज़ पढ़ते देखा हो, तो जिस भांति घुटने मोड़कर बैठते हैं, वैसे घुटने मोड़कर बैठ जायं। बच्चे के घुटने ठीक उसी तरह मुड़े होते हैं मां के गर्भ में। आंख बन्द कर लें, शरीर को ढीला छोड़ दें और श्वास को बिलकुल शिथिल—रिलेक्स्ड—छोड़ दें, ताकि श्वास जितनी धीमी और जितनी आहिस्ता होगी, आपके लिये उतना अच्छा होगा। श्वास वैसे न्यून हो जाय, शान्त हो जाय, श्वास को शान्त नहीं किया जा सकता। अगर आप रोकें तो श्वास तेजी से चलने लगेगी। रोकें मत, सिर्फ ढीला छोड़ दें, आंख बन्द कर लें और अपनी चेतना को भीतर नाभि के पास ले जायं। सिर से उतारें हृदय पर, हृदय से उतारें नाभि पर,

नीचे-ऊपर करता रहेगा। आप अपने ध्यान को आंख बन्द कर वहीं लाएं। जहां नाभि कम्पित हो रही है, श्वास के धक्के से पेट ऊपर-नीचे हो रहा है। आंख बन्द करके ध्यान को वहीं ले आयें, शरीर को ढीला छोड़ते जायं। थोड़ी नाभि के पास चेतना को ले जायं। श्वास का हलका-सा कम्पन भी पेट को ही देर में शरीर आपका आगे झुकेगा और फिर जाकर जमीन से लग जायेगा, तब आप ठीक उस हालत में आ जायेंगे जिस हालत में बच्चा मां के पेट में होता है।

शान्त होने की इससे ज्यादा कीमती आसन जगत में कोई भी नहीं है। आसन ऐसी हो जाय जैसा गर्भ में बच्चे का होना है, और आपका ध्यान नाभि पर चला जाय। बच्चे का ध्यान और चेतना नाभि पर होती है। आपका ध्यान भी नाभि पर चला जावेगा। अनेक बार ध्यान उचट जायेगा। कोई कहीं आवाज होगी, ध्यान चला जायेगा। कहीं कोई बोल देगा कुछ, ध्यान उचट जायेगा, विचार आ जायगा और ध्यान हट जायेगा। उससे लड़ें मत, अगर ध्यान हट जाये, तो चिन्ता मत करें। जैसे ही खयाल में आए कि ध्यान हट गया, तो वापिस अपने ध्यान को नाभि पर ले आयें। किसी करने में न पड़ें। किसी कानसेप्ट में न पड़ें। आप एक अज्ञात-अस्तित्व से जुड़े हैं, नाभि के द्वारा ही।

जिन लोगों को, शायद दो-चार लोगों को यहां भी, कभी अगर शरीर के बाहर होने का अनुभव हुआ हो पृथ्वी पर। कभी-कभी अचानक आकस्मिक हो जाता है, अचानक लगता है कि वे शरीर के बाहर हो गए। तो जिन लोगों को जरा भी शरीर के बाहर होने का भास आकस्मिक हुआ है—ध्यान से, या किसी साधना से हुआ हो, उनको एक अनुभव निश्चित होता है कि जब वे अपने को शरीर के बाहर पाते हैं, तो वे हैरानी से देखते हैं कि उनके और उनके शरीर के—जो नीचे पड़ा है—बीच उनकी नाभि से कोई प्रकाश की किरणों की भांति कोई चीज उन्हें जोड़े हुए है। पश्चिम में वैज्ञानिक उसे सिल्वर-कार्ड, रजत-रज्जु का नाम देते हैं। जैसे हम मां से जुड़े होते है इस भौतिक शरीर से, ऐसे ही इस बड़े जगत, इस बड़े अस्तित्व से, इस प्रकृति या अस्तित्व के गर्भ से नाभि से जुड़े होते हैं। जैसे ही आप नाभि के निकट अपनी चेतना को लाते हैं, मन निश्चल हो जाता है।

जीसस का बहुत अद्‌भुत वचन है, शायद ही ईसाई उसका अर्थ समझ पाया हो। जीसस ने कहा कि 'तुम तभी मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश करोगे जब

तुम छोटे बच्चे की भांति हो जाओ'। लेकिन यों तो इसका अर्थ यही हुआ कि हम छोटे बच्चों की तरह सरल हो जावें। लेकिन गहरे वैज्ञानिक अर्थ में इसका अर्थ होता है कि हम बच्चे की उस आन्तरिक अवस्था में हो जायं जब बच्चा होता ही नहीं, मां ही होती है और बच्चा मां के सहारे ही जी रहा होता है। न उसमें हृदय की धड़कन होती है, न उसका अपना मस्तिष्क होता है; बच्चा पूरा समर्पित मां के अस्तित्व का अंग होता है। ठीक ऐसी ही हालत *'निश्चल ध्यान-योग'* में घटती है। आप शांत हो जाते हैं, परमात्मा के साथ एक हो जाते हैं और परमात्मा के द्वारा आप जीने लगते हैं।

ध्यान से एक नये परिप्रेक्ष्य का जन्म

ये जो कृष्ण ने कहा है 'निश्चल ध्यान-योग से मुझमें एक ही भाव से स्थित हो जाता है'— इसका ठीक यही अर्थ है, जो बच्चे और मां के बीच स्थूल अर्थ है, वही अर्थ साधक और परमात्मा के बीच सूक्ष्म अर्थ है। इस सूक्ष्म प्रयोग को करेंगे, तो अर्थ स्पष्ट होगा।

अगर एक ही आदमी जिंदगी में अगर चार-पांच बार गीता का अर्थ करे, तो चार-पांच अर्थ निकालेगा; क्योंकि उसका मन बदलता चला जावेगा। उसकी बुद्धि कितनी ही गहरी हो, फिर भी छिछली ही होती है; क्योंकि मन और बुद्धि का गहरा होना होता ही नहीं, बुद्धि कितना ही शोरगुल मचाये वह सतह पर ही होती है—गहरी कभी जाती नहीं, ध्यान गहरा जाता है।

तो, एक तो उपाय यह है कि गीता के उन शब्दों को आप समझें, उनकी व्याख्याएं समझ लें और तृप्त हो जायें। उसका अर्थ हुआ कि आप गीता से चूक गए, गीता आपके काम न आई, शायद नुकसान भी हुआ; क्योंकि आपको भ्रम हुआ कि आपने जान भी लिया। दूसरा रास्ता है कि ध्यान से प्रवेश करें फिर गीता को समझें, तो फिर एक मजेदार घटना घटती है कि, जो लोग मन से गीता को समझेंगे, वे लोग गीता की हजार टीकाएं करेंगे। दो टीकाकार दुश्मन की तरह लड़ेंगे। मन से तो गीता की भी हजार टीकाएं हो जावेंगी और हर टीकाकार गीता का एक अर्थ करेगा और शेष को गलत कहेगा। और ध्यान से कोई प्रवेश करे, तो दूसरी घटना घटती है। गीता का भी वही अर्थ होगा, बाइबिल का भी वही अर्थ होगा, कुरान का भी वही अर्थ होगा। मन से कोई चले तो गीता के हजार अर्थ होंगे और ध्यान से कोई चले, तो दुनिया में जितनी गीताएं हैं, जितने धर्म-ग्रन्थ हैं—उन सबका एक अर्थ हो

जावेगा। ध्यान एक नया 'पर्सपेक्टिव', परिप्रेक्ष्य दे देता है— देखने का एक नया ढंग, जानने की, स्पर्श करने की एक नई व्यवस्था दे देता है।

इसलिये मैंने कहा कि इस सूत्र को अब समझें तो फर्क पड़ेगा। अगर हम पहले समझते तो इसका अर्थ होता :

मेरे लिए निरन्तर मन लगाने वाले; निरन्तर ईश्वर को स्मरण करने वाले, निरन्तर उसका नाम लेने वाले, मेरे ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्तजन, मुझमें ही जो अपने को समर्पित कर देते हैं। ऐसे लोग सदा ही मेरी ही भक्ति की चर्चा के द्वारा आपस में प्राणों को जनाते हुए, एक दूसरे को मेरा प्रभाव समझाते हुए तथा गुणों और प्रभावों सहित मेरा कथन करते हुए सन्तुष्ट होते हैं और मुझ में ही निरन्तर भ्रमण करते हैं।

तब इसका अर्थ बहुत गहरा न होगा, जैसा कि भक्त प्रभु चर्चा में, सत्संग में ईश्वर का गुणगान करने में, ईश्वर की स्तुति करने में करते हैं। ये अर्थ ध्यान से बिलकुल बदल जावेगा। ध्यान इसको सारी की सारी दिशा को मोड़ दे देता है। 'मेरे में निरन्तर मन लगाने वाले' का अर्थ ध्यान से जो जानेगा उसको पता चलेगा, 'वही जिसका कोई मन न रहा हो'; **क्योंकि परमात्मा में मन वही लगा सकता है जिसका मन समाप्त हो जाय**। अगर आपका मन जारी है तो मन संसार में ही लगा रहेगा; आप बीच-बीच में परमात्मा का नाम ले सकते हैं, पर मन संसार में ही लगा रहेगा। इसलिए हम देखते हैं कि तथाकथित भक्तजन मंदिरों में बैठे हैं, तो आप इस भूल में मत रहना कि उनका मन वहां है। मन्दिरों में बैठना आसान है, प्रभु का नाम उच्चारण करना भी आसान है, लेकिन मन का वहां होना उतना आसान नहीं।

नानक के जीवन में उल्लेख है : नानक एक गांव में आये। उस गांव के मुसलमान नवाब ने नानक को कहा कि सुना है कि तुम कहते हो कि हिन्दू मुसलमान सब एक हैं। नानक ने कहा, एक हैं ही। मैं कहता हूं इसलिये नहीं, हिन्दू-मुसलमान एक हैं, इसीलिये मैं कहता हूं। तो उस नवाब ने कहा, आज नमाज़ का दिन है, तो हमारे साथ मस्जिद में चलकर नमाज़ पढ़ो। सोचा उसने कि नानक इंकार करेंगे। वो हिन्दू मस्जिद जाने से इंकार करेगा। नानक तो बड़ी खुशी से तैयार हो गये। नवाब थोड़ा चिन्तित हुआ। उसने कहा कि थोड़ा ध्यान रखिए, नमाज़ में मेरे साथ सम्मिलित होना पड़ेगा। नानक ने कहा कि अगर तुम नमाज़ पढ़ोगे तो मैं भी पढ़ूंगा। लेकिन नवाब न समझा कि ये बात गहरी हो गई। आप भी एकदम से न समझे होंगे

कि क्या गहराई हो गई। नमाज़ शुरू हुई, नानक एक दीवाल से सटकर खड़े हो गये। नवाब बीच-बीच में झुककर और आंखें खोलकर नानक को देखता कि वे नमाज़ पढ़ रहे हैं कि नहीं पढ़ रहे; और नानक नमाज़ नहीं पढ़ रहे थे। तो नवाब को गुस्सा आने लगा कि ये आदमी बेईमान है, धोखेबाज है; और उसने जल्दी-जल्दी प्रार्थना पूरी की, ताकि इस आदमी को ठीक कर सके। प्रार्थना पूरी करने के बाद वह नानक पर टूट ही पड़ा। उसने कहा : "तुम बेईमान हो, धोकेबाज हो, अपने वचन का भी कोई खयाल नहीं। तुमने कहा था कि नमाज़ पढ़ूंगा, फिर तुमने पढ़ी नहीं।" नानक ने कहा : "मैंने कहा था कि तुम नमाज़ पढ़ोगे तो मैं भी पढ़ूंगा, लेकिन तुमने नमाज़ कहां पढ़ी, तुम हाथ-पैर से कवायद पूरी कर रहे थे, नमाज़ का व्यायाम तुम पूरा कर रहे थे, लेकिन मन तुम्हारा मेरी तरफ था; परमात्मा की तरफ नहीं। तो मैं तो बड़ी मुश्किल में पड़ा कि मैं क्या करूं ? वचन देकर बुरा फंस गया, एक नमाज़ चूक गई मेरी भी; क्योंकि मैंने वचन दिया, तुम प्रार्थना करोगे तो मैं भी करूंगा। तुम ही प्रार्थना में न गये ... ..."

मन : जागतिक संबंधों का जोड़

मन का अर्थ है—आपका जगत से जो सम्बन्ध है, उसका जोड़ आपका मन है। तो आप मन को परमात्मा में लगा नहीं सकते। मन तो संसार में ही लगेगा। हां, मन न रह जाये तो ये परमात्मा से समाहित होगा। इसलिये जब ये सूत्र ध्यान से समझेंगे, तो 'मेरे लिए निरंतर मन लगाने वाले', इसका वास्तविक अर्थ होगा— 'जिन्होंने अपना मन खो दिया और मुझमें निरंतर रहने लगे।' मन को आप परमात्मा में लगा नहीं सकते। मन का अर्थ ही बीमारी है, मन का अर्थ ही बेचैनी है। मन को आप परमात्मा में लगा नहीं सकते, क्योंकि जब तक मन है तब तक आप भी परमात्मा में लग नहीं सकते।

मन जहां शांत, शून्य होता है वहां आप परमात्मा में लग गये और ये लगना बहुत अलग तरह का है। मन को लगाते हैं तो चेष्टा करनी पड़ती है, फिर भी मन मानता नहीं। तो लगना चेष्टा का नहीं—चेष्टा रहित है। अब आप भागना भी चाहे तो भाग नहीं सकते।

नानक के जीवन में दूसरा उल्लेख है : वे मक्का गए और पवित्र मंदिर की ओर पैर करके सो गये। रात पुजारियों ने उन्हें हिलाया, उठाया और

जगाया और कहा कि तुम नासमझ मालूम होते हो। ये सोचकर कि तुम एक फकीर हो, तुम्हें ठहर जाने दिया मंदिर में; और तुम पवित्र मंदिर की तरफ पैर करके सो रहे हो। तुम्हें परमात्मा की तरफ पैर करते शर्म नहीं आती? तो नानक ने कहा, शर्म तो मुझे बहुत आती है, लेकिन मेरी भी अपनी मुसीबत है। मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे पैर तुम उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो, मैं राजी हूं। पुजारी मुश्किल में पड़ गए। पैर कहां किए जा सकते हैं जहां परमात्मा न हो। नानक ने कहा: "मेरी मुसीबत है कि मैं पैर कहां करूं? जहां भी पैर करूं वहां परमात्मा है, इसलिए कहीं भी पैर करूं कोई फर्क नहीं पड़ता।"

मन की विलीनता: परमात्मा में छलांग

जिस व्यक्ति का मन खो जावेगा उस व्यक्ति को ध्यान लगाना नहीं पड़ता, वह जहां भी जाये, जहां भी ध्यान लगाये परमात्मा ही है। वो जो भी करे सब तरफ परमात्मा ही है। मन वाले आदमी को कोशिश करके परमात्मा में लगना पड़ता है, फिर भी लग नहीं पाता। और मन खोया तो आप कोशिश भी करें कि परमात्मा से बच जायं, तो बचने का कोई उपाय नहीं; आप भागना चाहें, दूर निकलना चाहें तो दूर नहीं निकल सकते। आप आंख बन्द कर लें तो वो मौजूद होगा, आप आंख खोलें तो वो मौजूद होगा, आप कुछ भी करें तो वो मौजूद होगा। तभी निरन्तर मन लगाने का अर्थ जाहिर होगा। कोई उपाय रह नहीं जाता आपके हाथ, आप होते ही उसमें हैं; जैसे मछली सागर में हो, वैसे आप उसमें होते हैं। चारों ओर वही होता है, लेकिन ये अर्थ ध्यान से खुलेगा। अगर शब्द से खोलने जावेंगे तो ये सूत्र उल्टा मालूम होगा। 'मेरे में निरंतर मन लगाने वाले और मेरे में ही प्राणों को अर्पण करने वाले भक्त-जन'—इसका मतलब, कौन करेगा अर्पण प्राणों को? आप कर सकते हैं। सोचकर तो नहीं कर सकते, विचारपूर्वक तो नहीं कर सकते, मनपूर्वक तो नहीं कर सकते; क्योंकि जब कोई कहता है, मनपूर्वक तुम्हें अर्पित करता हूं, तो भी अंतिम निर्णायक वही रहता है। कल वो कह सकता है, वापिस लिया अर्पित प्राणों को—नहीं करते अर्पित, तो परमात्मा क्या करेगा?

जब आप मंदिर में जाकर सिर रखते हैं चरणों में, तो ये भी आपका निर्णय है; आप चाहें तो रखें, चाहें तो न रखें। और जब आप कहते हैं—परमात्मा, मैं अपने प्राणों को तुझे देता हूं, तो भी आप हैं देने वाले, कल आप

वापिस ले सकते हैं। आप मौजूद रहते हैं, मिटते नहीं। लेकिन ध्यान के बाद जो समर्पण होता है— वह कृत्य नहीं, वह आपका कर्म नहीं है। ध्यान से जो समर्पण होता है वह आपकी मजबूरी, आपकी हेल्पलेसनेस है — आप असहाय हैं। जैसे ही कोई ध्यान में उतरता है, ऐसा नहीं लगता कि मैं अपने प्राण परमात्मा को समर्पित करूं, फिर ऐसा ही पता चलता है कि मेरे प्राण सदा से उसी को समर्पित हैं—मेरे प्राण उससे ही चल रहे हैं। मेरी श्वास उसकी श्वास है। मैं उससे अलग नहीं हूं कि समर्पण कर सकूं। मैं समर्पित हूं। ये बहुत अलग बात है। समर्पण अब वापिस नहीं लिया जा सकता। ये अनुभव कि मैं उससे ही जी रहा हूं, वही मुझमें जी रहा है, मेरी कोई पृथकता नहीं है। इस अनुभव को कहेंगे — 'मेरे में ही प्राणों को अर्पित करने वाले'। लेकिन भाषा की अपनी मजबूरी है। ये भाषा में जो कहा गया है, ये बहुत उल्टा है। भाषा अक्सर चीजों को उल्टा कर देती है। क्योंकि भाषा के पास जितने भी शब्द हैं—किसी भी भाषा के पास, वे सभी अहंकार केन्द्रित हैं। आदमी ने बनाई हैं भाषाएं, आदमी ही उसका सृष्टा है। अहंकार केन्द्र पर है, इसलिये हर चीज अहंकार से जुड़ी है।

समर्पण और अहंकार

तो हम अहंकार के पार की कोई बात जब कहने जाते हैं, तो बड़ी मुश्किल होती है। कहना पड़ता है, समर्पण करो। ये बिलकुल गलत बात है; क्योंकि कोई समर्पण कैसे करेगा! और जब करेगा तो समर्पण कैसे होगा! कृत्य, कर्म समर्पण कैसे हो सकता है? कर्ता तो मौजूद होगा, मैंने किया। तो समर्पण नहीं हो सकता, लेकिन कहना पड़ता है कि समर्पण करो; जबकि ठीक होगा, उचित होगा कहना, कि समर्पण होता है, किया नहीं जाता। लेकिन अगर ऐसा कहा जाय कि समर्पण होता है, किया नहीं जाता, तो हमारा मन तत्काल दूसरी ओर चला जायगा। वो गलती बात समझ लेगा। वो कहेगा अपने बस की बात ही न रही, होगा जब हो जावेगा, हम कर ही क्या सकते हैं। या तो हम करेंगे समर्पण, तो अहंकार मौजूद रहेगा ही, समर्पण होगा नहीं; और या फिर कहेंगे--हम कर ही क्या सकते हैं, हम प्रतीक्षा करेंगे; होगा तब हो जावेगा। तब हम फिर धोखा दे रहे हैं।

हम समर्पण नहीं कर सकते, लेकिन मन को ठहरा सकते हैं। हम समर्पण नहीं कर सकते, लेकिन मन को तोड़ सकते हैं। और तब मन दूर हो जाता है, मन ठहर जाता है और समर्पण हो जाता है। समर्पण 'बाइ-प्राडक्ट'

है, ध्यान की छाया है। ध्यान हम कर सकते हैं, समर्पण छाया की तरह पीछे चला आता है। उनके जीवन में समर्पण बिना पगध्वनि के, बिना कोई आहट किये, बिना कोई खबर दिये, अतिथि की भांति चुपचाप भीतर मौन में प्रवेश कर जाता है। इस समर्पण की तरफ इशारा है—'मेरे में प्राणों को अर्पण करने वाले सदा आपस में मेरे प्रभाव को जनाने वाले हुए हैं।' इसका ये मतलब नहीं कि प्रभु की स्तुति की एक दूसरे से बातें कर रहे हैं, कि वह बहुत महान है, कि वह बड़ा दयालु है, कि वह बड़ा प्रेमी है। ये सब बातों से कोई किसी को जना (अनुभव कराना) नहीं सकता। लेकिन जो व्यक्ति एक ही भाव को उपलब्ध हो जाता है, तो पग भी उसके हिलते हैं तो परमात्मा की खबर उसके चारों ओर फैलती है। उसका पैर भी चलता है, तो परमात्मा ही उससे चलता है। उसके उठने में, उसके बैठने में, उसके चलने में, उसके आचरण में, उसके शब्द में, उसके मौन में, उसके सब ओर समस्त कृत्यों में परमात्मा का ही गुण-गान शुरू हो जाता है।

तपस्या : क्रमिक आत्महत्या

बुद्ध ने जब साधना शुरू की तब प्रारम्भ में ६ वर्ष तक कठोर तपस्या की। इस समय उनके पांच भक्त थे। तरह-तरह के भक्त होते हैं, वे पांच बुद्ध के भक्त नहीं थे। वे जो बुद्ध तपस्या करते थे, उसके भक्त थे। बुद्ध ने अपने शरीर को सुखा डाला था, इससे वे प्रभावित थे; बुद्ध से नहीं। शरीर सूख जाय, इसको वे मानते थे कि बुद्ध भूखा रहता है, लम्बे उपवास करता है, काया की चिन्ता नहीं करता, कंकड़ों-पत्थरों में सोता है, नंगे पैर चलता है। सूख गया कांटों की तरह। उस समय की बनाई गई एक प्रतिछवि, उस समय की बनाई गई एक प्रतिमा, उनका एक अस्थिपंजर शेष रहा है। उनका पेट पीठ से जुड़ गया है, सिर्फ हड्डियां छाती की दिखाई पड़ती हैं। मांस खो गया है। वे पांच उनके भक्त थे। फिर बुद्ध को पता चला कि मैं अपने को सताकर कहीं भी नहीं पहुंचा। ये तो एक तरह की क्रमिक आत्म-हत्या है। तो एक दिन जैसे भोग छोड़ दिया था, महल छोड़ दिये थे, वैसे ही एक दूसरा महान त्याग किया—त्याग भी छोड़ दिया।

वीतरागता : त्याग का त्याग

ये जरा कठिन है समझना। क्योंकि कोई महल को छोड़कर जाय, तो हम सब समझ लेते हैं, क्योंकि महल हमारे पास नहीं है और महल मिलने

की आकांक्षा हमारे भीतर है। तो जब कोई महल छोड़कर जाने लगता है, तो लगता है कि महा त्यागी है। बुद्ध ने एक दिन महल छोड़ा तो वे महा त्यागी थे। फिर बुद्ध ने पाया कि ये त्याग भी मेरा अहंकार है, ये भी मेरा कर्ता का भाव है, कि मैं त्याग कर रहा हूं, साधना कर रहा हूं, योग कर रहा हूं—ये सब मेरा अहंकार है। एक दिन त्याग भी छोड़ दिया। ये महा त्याग, जब कोई त्याग को भी छोड़ देता है, तब आदमी *'वीतराग'* हो जाता है। तब वह परमस्थित को पहुंचता है।

बाह्य क्रिया-कलाप मात्र भ्रामक आवरण

लेकिन पांचों भक्त बुद्ध को छोड़कर चले गये। उन्होंने सोचा कि ये बुद्ध भ्रष्ट हो गये। इन्होंने तो उपवास भी बन्द कर दिये। कोई भोजन लाता है तो ये भोजन ग्रहण कर लेते हैं। कोई कपड़े दे जाय तो कपड़े भी पहन लेते हैं। अब धूप में न बैठकर वृक्ष की छाया में बैठ जाते हैं। यही सोच वे पांचों बुद्ध को छोड़कर चले गये। फिर बुद्ध को परम ज्ञान हुआ, तो बुद्ध को खयाल आया—अपने उन पांच शिष्यों का। उन्होंने सोचा, कि जाकर मैं पहली बार उन्हीं को खबर दूं; क्योंकि वर्षों वे मेरे साथ थे। तो उनका पता लगाते हुए वे काशी आये, क्योंकि सारनाथ में वे पांचों भिक्षु ठहरे हुए थे। बुद्ध बोध-गया से चले उन भिक्षुओं को खोजते हुए सारनाथ पहुंचे। सांझ होने का वक्त था और वे पांचों भिक्षु एक चट्टान पर बैठकर सत्संग कर रहे थे। देखा बुद्ध को आते, तो उन पांचों ने कहा : "भृष्ट हो गया गौतम आ रहा है। देखो! उसके शरीर में हड्डियां नहीं दिखाई पड़तीं अब मांस-मज्जा आ गई है, बिलकुल भ्रष्ट हो गया। आ रहा है। हम इसे उठकर नमस्कार भी नहीं करेंगे। हम इसकी तरफ देखेंगे भी नहीं। अगर ये हमें नमस्कार भी करे, तो हम उसका उपेक्षा से उत्तर दें—हम इसे बैठने को भी न कहें, क्योंकि ये भ्रष्ट हो गया है।" बुद्ध जैसे-जैसे पास आये वे भूल गये कि हमने संकल्प किया है कि हम उठकर नमस्कार भी न करेंगे। और एक बुद्ध के चरणों में गिरा, फिर दूसरा और फिर तो वे पांचों बुद्ध के चरणों में गिर गये। बुद्ध ने उनसे पहली बात कही कि जब में दूर था तब मैंने अन्तर्ध्वनि सुनी कि तुम लोगों ने निर्णय किया था कि उठकर नमस्कार भो न करोगे, फिर तुम अपने संकल्प को क्यों छोड़ रहे हो? तो उन पांचों की आंखों में आंसू बहने लगे और उन्होंने कहा: "हम अपने संकल्प को न छोड़ते, लेकिन तुम्हारा आना वैसा ही आना है, जैसे परमात्मा आ रहा हो। जब तुम दूर थे हम तुम्हें देख न पाये और

तुम्हारी आंखों की रोशनी हम पर न पड़ी, तब तक हम संकल्प में दृढ़ थे। जैसे-जैसे तुम पास आने लगे, तो जैसे सूरज ऊगने लगे, रात छटने लगे, तारे डूबने लगें, वैसे-वैसे हमारा संकल्प, हमारा मन सब खोने लगा। और जब तुम पास आये तो हमें याद भी न रहा कि हम क्या कर रहे हैं। ये तो जब तुमने हमसे कहा कि तुमने अपना संकल्प क्यों छोड़ा, तो हमें भी अपने पुराने संकल्प की याद आई है।"

'कहने' से अधिक आवश्यक 'होना'

इस सूत्र का अर्थ ये नहीं है कि हम एक दूसरे को भगवान की स्तुति का ध्यान करके भगवान का स्मरण दिला दें, ऐसा कोई स्मरण नहीं होता। वैसे तो स्मरण चलता है, लोग माइक लगाकर अखंड कीर्तन करते हैं २४ घंटे।

तो आपने कभी खयाल किया—'उनके अस्तित्व से उनकी सुगंध को उड़ाते हुए जियें—वही स्तुति है परमात्मा की।' आपके कहने से कोई राजी नहीं होगा। आपके कुछ होने से राजी होगा, कि आप क्या है? और बड़े मजे की बात है, कि आप क्या कहते हैं— ये दो कौड़ी का हो जाता है अगर आप उसके विपरीत हैं।

अगर आप कुछ भी न कहें, लेकिन जो आप कहना चाहते हैं, उसके अनुकूल हैं, तो बिना कहे ही कह दिया जाता है।

लेकिन इस सूक्ष्म भाव का खयाल तो आपके भीतर उतरे और उसकी झलक मिले, तो ही स्पष्ट हो सकता है।

'तथा मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं'—ये बड़ा प्रीतिकर वचन है। अगर हम ईश्वर का कथन भी किसी से करते हैं, तो हम कथन करते वक्त संतुष्ट नहीं होते। हम संतुष्ट होते हैं—अगर दूसरा राजी हो जाय, 'कंविन्स' हो जाय।

अगर मैं किसी को अपने विचार में ढाल लूं, तो मैं संतुष्ट होता हूं; लेकिन वो संतोष अहंकार का संतोष है। सब 'कन्वर्शन' अहंकार केन्द्रित है। अगर मैं श्रेष्ठ बनता हूं, तो जो मैं मानता हूं वही आपको मनवा दूं; और अगर आपको मनवाने में सफल हो जाता हूं, तो जो संतोष मिलता है, वह अहंकार का संतोष है—वह पाप है। नहीं, सूत्र ये नहीं कहता है; सूत्र कहता है— **'मेरा कथन करते हुए संतुष्ट होते हैं।' आप राजी हुए या नहीं हुए, आपने सुना भी या नहीं सुना—ये निष्प्रयोजन है,** ये व्यर्थ है, इसकी बात ही क्या उठानी। उन्होंने प्रभु की चर्चा कर ली, ये काफी संतोष है। ये काफी संतोष है, उन्हें प्रभु

की चर्चा करने का एक क्षण मिला, उनके जीवन की समस्तता से प्रभु का गुणगान हो सका। ये संतुष्टि है। इसलिये ये बहुत अद्‌भुत बात है—हिन्दू धर्म "कन्वर्टिंग" नहीं है, हिन्दू धर्म किसी को रूपांतरित नहीं करना चाहता, हिन्दू धर्म ने अपने इतिहास में दूसरे को अपने धर्म में रूपान्तरित करने की कभी चेष्टा नहीं की।

मन की सत्याकांक्षा और परावलंबन

ये बड़ी अद्‌भुत बात है। क्योंकि ये स्वाभाविक है, मन की ये स्वाभाविक आकांक्षा होती है कि जो मैं मानता हूं वह दूसरा भी मान ले। शायद आपने सोचा न हो, ये आकांक्षा क्यों होती है? यह आकांक्षा इसलिए होती है कि मुझे पक्का भरोसा नहीं—उस पर जो मैं मानता हूं। जब दूसरे को भी राजी कर लेता हूं, तो थोड़ा भरोसा आता है। जब भीड़ बढ़ने लगती है और बहुत लोग राजी होने लगते हैं, तब मैं समझता हूं कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है; अन्यथा इतने लोग कैसे मानते। मनोवैज्ञानिक कहते हैं—भीतरी 'इनफीरियारिटी' है, भीतरी हीनता है, भीतर पक्का भरोसा नहीं; दूसरे को राजी कराकर अपने पर भरोसा आता है।

सुना है मैंने कि न्यूयार्क में जिसने सबसे पहला बैंक खोला, उससे पूछा गया कि तुझे बैंक खोलने का कैसे खयाल आया और कैसे तूने बैंक खोला? तो उसने कहा कि मैंने बैंक खोला, क्योंकि मेरे पास ५० डालर थे, और कोई धन्धा नहीं था। तो मैंने सोचा, बैंकिंग ही सही। फिर मैंने एक दफ्तर खोला, तख्ती लगाई और एक बोर्ड लगाया बैंक का और मैं दफ्तर में बैठ गया। पहले दिन एक आदमी आया और १०० डालर जमा कर गया, दूसरे दिन दूसरा आदमी आया और ३०० डालर जमा कर गया। तो तीसरे दिन मेरे जो ५० डालर थे, वो भी मैंने जमा कर दिए। मेरी हिम्मत तब तक बढ़ चुकी थी कि बैंक चलेगा, कोई डर की बात नहीं।

करीब-करीब 'कनवर्टिंग' माइंड इसी तरह के होते हैं। दूसरा भी बदल जाये तो अपने पर भरोसा आता है कि जो हम मानते हैं वो ठीक है। वे किताबें, वे शास्त्र, वे सन्देश सही होने चाहिये, नहीं तो ये आदमी कैसे राजी हो जाते। इसलिए जो आपसे राजी नहीं होता तो आप बड़े नाराज हो जाते हैं। वो आप उस पर नाराज नहीं हो रहे, वो आपको अपना भीतरी खोखलापन अब दिखाई पड़ रहा है—कि कोई मुझसे राजी नहीं हो रहा, किसी को मैं सहमत नहीं कर पा रहा हूं। तो आपकी जड़ें हिलने लगीं,

आपका भरोसा टूटने लगा। अब अगर दो दिन तक आदमी उसके पास जमा करवाने न आते, तो तीसरे दिन ये अपनी तख्ती निकाल कर रख देता, अपना कोई काम शुरू कर देता।

जीवन-सुगंध से सहज परिवर्तन ही श्रेष्ठ

हिन्दू-धर्म 'नान-कन्वर्टिंग रिलीजन' है। किसी को बदलने की आकांक्षा नहीं। दयानन्द ने पहली दफा हिन्दू विचार में बदलने का खयाल किया। वे बुरे हैं—ऐसा नहीं कहता, लेकिन हिन्दुओं की अपनी एक धारा थी, उसको तोड़ने वाले हैं—ऐसा जरूर कहता हूं। क्योंकि हिन्दू मानते हैं— किसी को क्या बदलना।

अगर मेरे जीवन की सुगन्ध किसी को बदल दे तो काफी है, लेकिन मैं क्यों किसी को बदलने जाऊं। ये तो एक आक्रमण है, हिन्सा है।

क्यों मैं किसी को चोट करूं किसी के ऊपर कि तुम गलत हो ? क्यों मैं किसी को राजी करने के लिए आग्रहशील बनूं ? मेरा जीवन तुम्हें बदलता है, ठीक है, अगर तुम खुद इस सुगन्ध से प्रभावित होकर आ जाओ, तो ठीक है। अगर मंदिर की बजती घंटी ही तुम्हें बुला ले तो काफी है; अलग से तुम्हें बुलाने जाने की कोई जरूरत नहीं। और कभी कोई जबरदस्ती से बुला के ला भी नहीं पाता; और ले भी आये तो शरीर ही आता है, आत्मा पीछे छूट जाती है।

ईश्वर की स्तुति अस्तित्व से है— व्यक्तित्व के होने से है। तब फिर संतोष दूसरे को राजी करने में नहीं; तब संतोष अपनी अभिव्यक्ति में है—तब संतोष, जो मेरे भीतर था, उसको सुवासित कर देने में है, उसे बाहर फैला देने में है; दूसरे पर क्या परिणाम हुए—ये विचारने में नहीं।

इधर मैं देखता हूं, इधर बड़े विचारक के, बड़ी उम्र वालों के आखिरी दिन हैं। उनने जिंदगी भर बहुत कोशिश की लोगों को समझाने की, अब बहुत 'फ्रस्ट्रेटेड' (हताश) हैं, अब बहुत विशाद है मन में। विशाद ये कि कुछ हो नहीं पाया, कोई राजी नहीं हुआ, कोई बदला नहीं। लेकिन ये विशाद धार्मिक आदमी के मन में होना नहीं चाहिए, नहीं तो धर्म भी दूकान हो गई—कि मैं दिन भर दूकान खोले बैठा रहा और कोई ग्राहक नहीं आया, और जिन्दगी समाप्त होने को आई, माल की कोई बिक्री न हुई।

मेरी जिन्दगी बेकार चली गई। नहीं, ये सवाल ही नहीं। जो ध्यान में गहरा उतर जाता है, उसे फिर परमात्मा की स्तुति सिर्फ उसका आनन्द है। वो उसमें ही सन्तुष्ट है। इसके आगे का कोई हिसाब मन में अगर है, तो ध्यान के बिना ही आप परमात्मा की तरफ चल पड़े, इसे समझना आप—मन से ही चल पड़े। इसे समझना आप : मन तो सब जगह दूकान खोल लेता है, धन्धा बना लेता है—मन तो सब जगह अहंकार के लिए रास्ता खोज लेता है—मन तो सब जगह अहंकार का भोजन जुटा लेता है।

तत्वज्ञान से अज्ञानांधकार का तिरोहण

'और वे मुझमें ही रमण करते हैं, वे मुझमें ही डूबते-उतराते हैं, वे मुझमें ही डुबकियां लेते रहते हैं'—ये मन से सम्भव नहीं है, ये मन से बिलकुल असम्भव है। इसलिये मैंने कहा कि इस सूत्र को ध्यान का सूत्र समझें। कृष्ण कहते हैं : "उन निरंतर ध्यान में लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजने वाले भक्तों को मैं वह तत्वज्ञान रूपी योग देता हूं, जिससे वे मेरे को ही प्राप्त होते हैं। और हे अर्जुन ! उन पर अनुग्रह करने के लिए ही मैं स्वयं उनके अंत:करण में एक ही भाव से स्थित होता हूं। अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को प्रकाश के तत्व-ज्ञान रूपी दीपक द्वारा नष्ट करता हूं। ऐसी जिसकी चित्त दशा निर्मित हो गई है कि—जो परमात्मा में ही डूबता-उतराता है, उसमें ही डुबकियां लेता है, उसी में रमण करता है, उसके अलावा जिसका कोई संसार न बचा हो कहीं, परमात्मा ही जिसका संसार हो गया हो, परमात्मा ही हो जिसकी वासना, परमात्मा ही हो जिसकी इच्छा, परमात्मा ही हो जिसकी प्रार्थना—सभी कुछ जिसका परमात्मा में हो गया हो, ऐसे व्यक्ति को बुद्धि की उपलब्धि होती है, बुद्धि-योग उपलब्ध होता है। ऐसे व्यक्ति में प्रतिभा का जन्म होता है। ऐसा व्यक्ति पहली दफा बुद्धिमत्ता को जिसको बुद्ध ने प्रज्ञा कहा है, उसको पाता है।" बुद्ध ने तीन शब्दों का उपयोग किया है, वे उपयोगी होंगे। इस सूत्र को समझने में बुद्ध ने तीन शब्दों पर सारी की सारी चेतना को केन्द्रित किया है। वे तीन शब्द हैं—शील, समाधि और प्रज्ञा। **शील** का अर्थ है—जो आप करते हैं, **समाधि** से अर्थ है—जो आप हो जाते है और **प्रज्ञा** से अर्थ है—जो आप में खिलता है।

बुद्धि - योग

शील का अर्थ है—आपका जीवन रूपान्तरित हो। समाधि से अर्थ है कि आपकी चेतना रूपांतरित हो। और प्रज्ञा का अर्थ है—जब ये दोनों रूपांतरित

होते हैं, तब जो सम्पदा आपको उपलब्ध होती है, जो धन आपको मिलता है, जो परम धन आपको मिलता है—उस परम धन को कृष्ण ने *बुद्धि-योग* कहा है।

हमें थोड़ी हैरानी होगी, क्योंकि हम सब अपने को बुद्धिमान मानते हैं। कृष्ण के हिसाब से वह बुद्धि तब उपलब्ध होती है जब कोई परमात्मा के साथ एक हो जाता है। तो जिसको हम बुद्धि कहते हैं वह क्या होगी ? जैसे कोई आदमी झील के किनारे खड़ा हो, तब आप खयाल करें—झील शांत है, आदमी किनारे खड़ा है और उस आदमी का प्रतिबिंब उस झील में बनता है; लेकिन प्रतिबिंब उलटा बनता है। बनेगा ही, प्रतिबिंब सभी उलटे बनते हैं। अगर आपने झील के किनारे खड़े आदमी को न देखा हो और केवल झील पर बनने वाले प्रतिबिंब पर ही आपकी आंख हो, तो आदमी आपको सिर के बल खड़ा मालूम पड़ेगा। लेकिन आपने यदि झील के प्रतिबिंब को न देखा हो और आदमी को ही देखा हो, तो यही आदमी की ठीक स्थिति होगी।

जिसको हम अभी बुद्धि कह रहे हैं, वो हमारे मन की झील पर हमारी बुद्धिमत्ता का बना प्रतिबिंब है—'रिफलेक्शन' है। हमारी मन की झील पर जो प्रतिबिंब बन रहा है, उसी को हम बुद्धि कह रहे हैं; वो बुद्धि नहीं, बुद्धि का प्रतिबिंब है। और मजा ये है कि प्रतिबिंब उल्टा होता है। इसलिए जिसे हम बुद्धिमान कहते हैं, वो उस परम बुद्धिमान के अनुसार बिलकुल उल्टे होते हैं। जिनको हम उल्टी खोपड़ी के लोग कहते हैं, वे किसी भी चीज को सीधा नहीं समझ सकते, उसका तत्काल उल्टा कर लेते हैं। वे परमात्मा की बातों में से भी ऐसी बातें निकालते हैं, कि परमात्मा तक पहुंचना असम्भव हो जाय। वे धर्म में भी इस तरह का तर्क खोजते हैं, कि धर्म तत्काल व्यर्थ मालूम होने लगे। वे जो भी करते हैं, कुछ उलटा होता है। उस उल्टे का कारण है। क्योंकि प्रतिबिंब को जिन्होंने बुद्धि समझा है, वे उल्टे चलेंगे ही। इस हमारी सदी में जिसको हम बुद्धि की सदी कह सकते हैं, वह प्रतिबिंब वाली बुद्धि—'रिफ्लेक्टेड इन्टलेक्ट'—है। निश्चय ही ये बुद्धिमान सदी कभी नहीं थी पृथ्वी पर; लेकिन ऐसी बुद्धिहीन सदी भी खोजनी मुश्किल है, वह भी उल्टी।

पता है—पहिले न तो ये शिक्षा थी, न इतने शास्त्र थे, न इतने विचार थे; लेकिन आदमी इससे ज्यादा बुद्धिमान था। निश्चित ही यदि बुद्ध को हम मेट्रिक की परीक्षा में बिठाएं, तो मैं नहीं मानता कि अगर वे चोरी वगैरह करें तो अलग, नहीं तो वे पास नहीं हो सकते। नकल-वकल कर लें तो बुद्ध

क्या, बुद्धू भी पास हो जाय, बुद्ध भी पास हो जायं; नहीं तो फेल होना निश्चित है। और अब तथाकथित बुद्धिमान अगर बुद्ध से बात करने आवें, तो निश्चित ही जीत जावेंगे, बुद्ध हार जावेंगे; लेकिन फिर भी बुद्ध बुद्धिमान हैं। और जिसको हम बुद्धिमान कह रहे हैं, वह केवल उल्टा है। बुद्धि का एक और रूप भी है। जब तक हम मन के पार न उठें तब तक वह सीधा रूप हमें दिखाई नहीं देता। हमारी झील से आंख उठे तब दिखाई पड़ेगा कि कोई आदमी झील पर खड़ा है, जिसके पैर नीचे हैं और सिर ऊपर है; और प्रतिबिंब में पैर ऊपर हैं और सिर नीचे है। तब हमें पता चलेगा कि प्रतिबिंब उल्टा था।

सब कुछ सापेक्ष--परम कुछ भी नहीं

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन की काफी बदनामी हो गई। बदनामी ऐसी कि गांव के पंडितों ने, पुरोहितों ने जाकर सम्राट से कहा कि ये आदमी इस तरह की बातें करता है कि लोग मार्ग से च्युत हो जावेंगे। ये आदमी खतरनाक है। ये आदमी उलटी बातें करता है लोगों से। सम्राट ने उसे बुलाया दरबार में। मुल्ला अपने घर से निकला, अपने गधे पर बैठा और दरबार की तरफ चला। एक भीड़ उसके साथ चलने लगी, लोग उस पर हंसी मजाक करने लगे, क्योंकि वह गधे पर उल्टा बैठा था; लेकिन उसने अपनी गम्भीरता कायम रखी। जब वह दरबार में पहुंचा तो सम्राट ने खुद देखकर उससे पूछा : "नसरुद्दीन तुम गधे पर उल्टे क्यों बैठे हो ?" नसरुद्दीन बोला : "महाराज अपनी-अपनी समझ की बात है। मैं तो समझता हूं, गधा ही उल्टा खड़ा है, हम तो सीधे ही बैठे हैं। आप जरा गधे की तरफ देखें। ये निर्भर करेगा कुछ बातों पर कि कौन उल्टा है ? मैं तो सीधा ही बैठा हूं। गधा ही इसी तरफ मुंह किये खड़ा था, मैं सीधा बैठ गया। अगर आप जिसको सीधा कहते हैं वैसा मैं बैठता, तो गधे को मुझे मोड़ना पड़ता, उसे तकलीफ देनी पड़ती।" लेकिन मजे की बात है कि साम्राट ने कहा कि अब इस आदमी को ले जाओ; क्योंकि इससे अब आगे बात करनी ठीक नहीं।

हम कैसे देखते हैं, कहां से देखते हैं, किस बिन्दु से देखते हैं—इस पर सब निर्भर करता है। उल्टा और सीधा सापेक्ष है, 'रिलेटिव' है। लेकिन अगर दोनों बातें हमारे खयाल में हों, तब। एक ही बात अगर हमारे खयाल में हो तो सीधे उलटे का सवाल ही नहीं उठता। जो होता है, उसे हम सीधा मानकर चलते हैं। हम मन में ही देखते हैं छवि अपनी सम्भावनाओं की, मन में हमने प्रतिबिंब देखा है—उसे हम बुद्धि समझते हैं, उसको हम शिक्षित करते

हैं विश्व-विद्यालयों में, 'ट्रेन्ड' करते हैं, प्रशिक्षित करते हैं। उसी प्रतिबिंब को हमारा बोलना बड़ी बुद्धि कहता है, वह बुद्धि प्रतिबिंब से ज्यादा नहीं।

मान्य बुद्धिमत्ता की भ्रामकता

'एक और बुद्धिमत्ता है, कृष्ण उसकी बात कह रहे हैं—जब कोई ध्यान को उपलब्ध होता है और जब कोई मुझमें डूब जाता है, तब उसे बुद्धि-योग, उसे बुद्धिमत्ता का पता चलता है कि बुद्धि क्या है।' हमारी जो बुद्धि है, वह हमें ही नुकसान पहुंचाती है। कभी आपने खयाल किया कि आपकी बुद्धि आपको नुकसान पहुंचाने के सिवाय कुछ और भी करती है? आदमी कितने संकट में रोज पड़ता जाता है—इसका बहुत कुछ कारण तो उसकी बुद्धि है। वह जितनी बुद्धिमानी करता है, उसमें पाता है कि उससे कितने संकट अंततः कई गुने हो गए। हमने सोचा था, हमारे बुद्धिमानों ने और अंततः तथाकथित बुद्धिमानों ने कहा था कि सारी दुनिया को शिक्षित कर देने से सुख का साम्राज्य उतर आयेगा। 'यूनिवर्सल एजुकेशन' चाहिए, और उनकी बात हम सबको जंचती थी। अब हमने सारी दुनिया को शिक्षित कर लिया और जहां-जहां हमने शिक्षित कर लिया वहां पहली दफे मुसीबत के नए आयाम शुरू हो गए, जिनका हमें पता भी नहीं था। आज अमेरिका सबसे ज्यादा शिक्षित है, लेकिन अमेरिका के बच्चे आज क्या कर रहे हैं? वह ज्यादा से ज्यादा जंगली हालत में जो किया जा सकता है, वह कर रहे हैं। लेकिन बुद्धिमानों ने कहा था, सबको सुशिक्षित कर देने से दुनिया में बड़ा सुख आ जावेगा। लेकिन जितनी शिक्षा बढ़ी है उतना दुख बढ़ा है; और ऐसा लगता है कि शिक्षित आदमी सुखी हो ही नहीं सकता।

बुद्धिमान जिनको हम कहते हैं, उनकी मानकर दुनिया चल रही है। जिनको कृष्ण बुद्धि-योगी कहते हैं, उनकी मानकर दुनिया अब तक चली नहीं। पूजा वगैरह हम उनकी कर लेते हैं, वो आसान तरीका है उनसे निपटने का। जिनसे निपटना हो उनकी पूजा करो, फूल चढ़ाओ। उनको नमस्कार करो और वो क्षमा करें।

ये जो दूसरी बुद्धिमत्ता है, वो जीवन को आनन्द की तरफ ले जाती है। हमारी बुद्धि तो कब की खत्म हो गई। अगर दुःख ही कसौटी हो, तो जिसे हम बुद्धि कहते हैं, वह जहर है। और आनन्द कसौटी हो, तो कृष्ण जिसे बुद्धि कहते हैं, उसी की तरफ ध्यान लगाना होगा। ये बुद्धि कुछ और है, और उन्हें उपलब्ध होती है, जो भीतर की ओर ध्यान में लगे हैं।

कृष्ण कहते हैं : "जो निरन्तर मेरी भक्ति में, मेरे स्मरण में डूबे हुए हैं—उन्हें वह तत्वयोग, बुद्धियोग देता हूं, जिससे वे अन्ततः मुझे उपलब्ध हो जाते हैं—अन्ततः परमात्मा रूप हो जाते हैं; और उन पर अनुग्रह करने के लिये ही मैं उनके अन्तःकरण में एक ही भाव से स्थित होकर अज्ञान से उत्पन्न हुए अंधकार को मैं ज्ञान रूपी दीपक द्वारा नष्ट करता हूं।"

'तत्व-ज्ञान-योग'—दीपक द्वारा—ये जो बुद्धि जब भीतर पैदा होती है, ये जो बुद्धि-योग उपलब्ध होता है, जब जीवन दिखाई पड़ता है उसकी समग्रता में, जैसा वह है—वो हमारे विचारों के अनुसार, चक्षुओं के अनुसार हमारी दृष्टियों के अनुसार ही है। वो अभी जिन्दा है, उसकी वास्तविकता में उसके तत्वरूप में दिखाई देता है, तो यही प्रज्ञा दिया बन जाती है और सारा अज्ञान—अब तक जिसमें हम जिये हैं, जिसको अब तक हमने अपना जीवन समझा है, जिसमें हम ठुकराये गये हैं, दुखी हुए हैं, नरकों में भ्रमण किया है—वो सारा अंधकार शून्य हो जाता है। मनुष्य एक सम्भावना है— एक प्रकाश की। मनुष्य बीज है प्रकाश का। एक ज्योति उसमें छिपी है। जैसे मैंने कहा, अंडे में छिपा है पक्षी; जैसे ही अंडा फूट जाता है, पक्षी उड़ जाता है। वैसे ही एक ज्योतिर्मान पक्षी आपके भीतर छिपा है, एक ज्योति पंख खोले और आकाश की तरफ लपट बन जाय—वह आपके भीतर छिपी है। लेकिन मन को तोड़ना पड़ेगा और अहंकार को गिराना पड़ेगा। इस बुद्धि-योग को माना गया है—धर्म।

और फिर धर्म और अधर्म के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होता।

धर्म-अधर्म के सम्बन्धित होने का अज्ञान

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो बुद्ध से एक ने पूछा है कि जब आपको ज्ञान हुआ तब फिर संसार और सत्य का क्या सम्बन्ध होता है—वो आप बतायें कि जब आपको ज्ञान हुआ तब आप में और शरीर में क्या सम्बन्ध हुआ? तब आप संसार में किस भांति जीते हैं, वो आप हमें बतलाइये? एक आदमी गुजरता हो रास्ते से, अंधेरा हो, रस्सी पड़ी हो और उसे वह सांप खयाल में आ जावे। वह भागे, दौड़े, फड़फड़ाये, पसीना-पसीना हो जावे, खून की रफ्तार बढ़ जाये, रक्त-चाप बढ़ जाये, धड़कन होने लगे, बेचैन हो जाये और फिर कोई उससे कहे कि घबड़ाओ मत, ये लालटेन हाथ में लो और देख लो कि दरअसल वह है क्या, सांप है या रस्सी है? और वो आदमी कहे कि मैं चलूंगा बाद में,

पहले आप मुझे बताएं कि आपने लालटेन लेकर उस सांप को देखा ? अगर आपने लालटेन लेकर सांप को देखा हो, तो आप मुझे बतलाइए कि उस सांप और रस्सी से क्या सम्बन्ध है ? तो वो आदमी जिसके हाथ में लालटेन है, वो क्या कहेगा ? वो कहेगा कि लालटेन लेकर जब कोई जाता है, तो रस्सी ही रह जाती है सांप होता ही नहीं। और अंधेरे में जब कोई जाता है तब सांप होता है, रस्सी होती ही नहीं । लेकिन एक आदमी खबर देता है रस्सी की और एक आदमी खबर देता है सांप की, तो सुनने वाले को लगता है— सांप है और रस्सी है। फिर वो पूछता है—सांप और रस्सी के बीच सम्बन्ध क्या है ?

फिर बुद्धिमान लोग हैं हमारे पास, जो सम्बन्ध के लिए शास्त्र निर्मित करते हैं कि क्या सम्बन्ध है ? वो देखने नहीं गये, उन्होंने केवल खबर सुनी है दो तरह के लोगों से। अज्ञानी तो कम-से-कम सांप देखकर लौटा है, वे लोग गये ही नहीं कि सांप देखकर लौट आयें। वे जो लोग हैं, वो घर में ही बैठकर खबरों का हिसाब जोड़ रहे हैं। कुछ लोग कहते हैं—सांप है, कुछ लोग कहते हैं—रस्सी है। और ये हिसाब लगाते हैं कि इन दोनों के बीच सम्बन्ध क्या है ?

सारी दुनिया में इन दो के बीच, उनके नाम कुछ भी हों—संसार हो, मोक्ष हो, आत्मा हो, पदार्थ हो, मेटीरियल हो, कुछ भी हो—इसमें फर्क नहीं पड़ता, दो के बीच सम्बन्ध क्या है। दुनिया में सैकड़ों दर्शन-शास्त्र विकसित हुए हैं। कोई कहता है दोनों समानान्तर हैं, कोई कहता है दोनों के बीच संबंध है। कोई कहता है दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है, कोई कहता है दोनों अपने स्वभाव का परिवर्तन करते रहते हैं। कोई कहता है— एक सत्य है, दूसरा झूठ है। कोई कहता है—पहला झूठ है, दूसरा सत्य है। लेकिन सब व्यर्थ है; क्योंकि उन्होंने प्रकाश ले जाकर देखा ही नहीं कि वहां दो हैं भी या नहीं ?

कृष्ण कहते हैं कि अज्ञान-अंधकार मिट जाता है । इस बुद्धियोग के द्वारा जो ज्योति-प्रज्ञा प्रगट होती है, वो अंधकार मिटाती है। अंधकार मिट जाने में दो नहीं रह जाते; एक ही रह जाता है। शायद ये भी कहना ठीक नहीं कि एक रह जाता है, क्योंकि एक कहने से तो उस समय तत्काल संख्या का बोध होता है।

अद्वैत की धारणा

इस देश ने बड़ा कीमती शब्द खोजा है—**अद्वैत**। ये नहीं कहा कि एक रह जाता है; ये कहा कि दो नहीं रह जाते, क्योंकि एक रह जाता है, तो भी हमें लगता है कि संख्या का आग्रह है और जब भी आप एक का सोचेंगे तो दो का तत्काल खयाल आयेगा। एक का कोई अर्थ ही नहीं होता अगर दो न हो। तो एक का कुछ अर्थ होता है, दो के संदर्भ में, इसलिए जिन्होंने जाना था प्रकाश को, उन्होंने इतना ही कहा कि दो नहीं हैं वहां। एक है यह भी हम नहीं कहते। ये भी हम नहीं कहते कि दो वहां नहीं। वे दोनों वहां नहीं, जो तुमने जाने। वहां कुछ है—'एक्स', अज्ञात और वह जानने से ही जाना जा सकता है। कहे हुए वक्तव्यों, कहे हुए वचनों से उसको नहीं जाना जा सकता।

जानने के पूर्व जानने के आग्रह की भूल

धर्म एक अन्तः क्रान्ति है, एक 'एलकेमी' है, एक कीमिया है—जिसमें आदमी अपने को जानने के नये तत्वों पर स्थापित हो, नये प्रकाश और नई आंखें उपलब्ध हों। नई ज्योति, नया चेतन अभिभूत हो तो ही धर्म दिखाई पड़ता है।

हम सब जानने के पहले जानना चाहते हैं, इससे इस दुनिया में बहुत-सा मिथ्या—फाल्स—ज्ञान प्रचिलित हो जाता है।

हम सब जानने के पहिले जानना चाहते हैं। पक्षी उड़ने के पहिले जानना चाहता है कि उड़ान क्या है ? तैरने के पहिले हम जानना चाहते हैं कि स्वाद क्या है इस तैरने का ? स्वतन्त्रता के पहिले, पंख फैलने के पहिले हम जानना चाहते हैं कि स्वतन्त्रता का अर्थ क्या है। तब हमें बताने वाले लोग भी मिल जाते हैं, क्योंकि दुनिया में जब किसी चीज की मांग हो, 'डिमांड' हो तो 'सप्लाई' भी हो जाती है। दुनिया के अर्थ-शास्त्री भी कहते हैं कि जब किसी चीज की मांग करो, तो कोई न कोई देने वाला जरूर मिल जावेगा। बस मांग होना चाहिए, बाजार में मिल जावेगी। जब हम मांग करते हैं कि बिना जाने हुए जानना है, तो एक वर्ग है दुनिया में, जो बिना जाने जनाने लगता है। वो कहता है, क्या जरूरत है ! ये रही किताबें, ये रहे शब्द—इन्हें कंठस्थ कर लो, इन्हें पी जाओ, इन्हें याद कर लो, इन्हें दोहराने लगो, तोते की तरह रट लो, ज्ञान हो जायगा। हमारे पास ऐसा ज्ञान है। कभी आपने

सोचा—आपका ईश्वर, आपकी आत्मा तोते की तरह रटा हुआ ज्ञान है। आपके पिता से आपको यह मिल गया, आप कृपाकर अपने बेटे को बता देंगे। बेटा औरों को बता देगा, किसी और को बता देगा।

लेकिन अनुभव की खुद प्रतीति, खुद के साक्षात्कार की एक किरण भी भीतर नहीं है, इसलिए तो धर्म की इतनी चर्चा होती है और धर्म इतना व्यर्थ मालूम होता है।

और धर्म का इतना व्यापक कार्य चलता है और परिणाम कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। सारी दुनिया में प्रकाश की चर्चा है और घनघोर अंधकार है; और जहां देखो वहीं परमात्मा का प्रचार चलता है—मंदिर में, मस्जिद में, चर्च में, गुरुद्वारे में; सब जगह प्रभु की स्तुति चल रही है और प्रभु की कोई झलक किसी आंख में दिखाई नहीं दे रही। अजीब धोखा है, और आदमी अपने को धोखा देने में इतना कुशल मालूम होता है कि जिसका कोई हिसाब नहीं। जो है ही नहीं हमारे जीवन में, उसकी हम कितनी चर्चा कर रहे हैं और चर्चा से ही तृप्त हैं, चर्चा से ही समझ रहे हैं—समाप्त हो गया काम। एक औपचारिक बात है, कर लेते हैं, सुन लेते हैं। बचपन से सुन लेते हैं, उसे दोहराये चले जाते हैं; फिर भी जिन्दगी भर खयाल भी नहीं करते कि जिन शब्दों की चर्चा है, उनके पीछे प्राण भी हैं ? उनमें जान है ?

तथाकथित धर्म : मात्र एक संस्कार—'कंडीशनिंग'

मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जो अपने एक-एक शब्द तौलेगा। ईश्वर को यदि मैंने जाना है, तो ही मैं इस शब्द को ओंठों पर लाऊं। ये शब्द बहुत कीमती हैं और उन ओंठों के लायक नहीं, जिन ओंठों ने बाकी शब्दों को उधार ले लिया हो और वे दोहरा रहे हैं। आत्मा अगर जानी नहीं है, तो मत करें उपयोग उसका। शब्द का मत उपयोग करें, अगर शब्द से आप बच सकें, तो शायद दूसरा अनुभव ये हो कि आप भी जानें कि क्या है आत्मा। इन शब्दों से हम इतने राजी हैं कि लम्बी 'कन्डीशनिंग' है।

एक आखिरी बात, रूस में एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ—पैवलोव। उसने 'कन्डीशनिंग-रिफ्लेक्स' का एक सिद्धांत प्रस्तावित किया। कीमती सिद्धांत है और आत्यंतिक रूप से सही नहीं है, फिर भी बहुत दूर तक सही है। उसने एक कुत्ते को भूखा रखा, उसे जब वह रोटी देता था तो घंटी बजाता था। रोटी देखकर कुत्ते की लार टपकती थी, तब वह घंटी भी सुनता था। फिर कुछ दिन बाद रोटी तो नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई और कुत्ते के मुंह से लार

टपकने लगी। अब घंटी से लार के टपकने का कोई भी सम्बन्ध नहीं। यदि घंटी न बजायं तो कुत्ता लार नहीं टपकायेगा; ये पैवलोव का कुत्ता लार टपकाता है। तो पैवलोव ने कहा, ये 'कन्डीशनिंग' हो गई, ये संस्कार हो गया। रोटी दी, कुत्ते की लार टपकी, उसके साथ ही घंटी बजी, कानों ने घंटी सुनी। रोटी और घंटी संयुक्त हो गई, 'एसोसिएटेड' हो गई। तो रोटी नहीं दी, सिर्फ घंटी बजाई।

तोते-जैसा मन धार्मिक नहीं हो सकता

हम भी करीब-करीब शब्दों के साथ इसी तरह 'कंडीशन्ड' हो गये हैं। मंदिर दिखा, हाथ जोड़ लिये। बचपन से पिता के साथ गये। पिता ने कहा, ये मंदिर है, हाथ जोड़ लो, तो आपने हाथ जोड़ लिए। अब कन्डीशन्ड होकर आप सोचते हैं, बड़े धार्मिक हैं। घंटी बजी और लार टपकने लगी। इतना आसान नहीं कि हाथ जोड़े चले गए और निपटारा हो गया मंदिर से। कभी कोई उत्सव आया कि हर्ष मना लिया। वो धर्म एक सामाजिक कृत्य होकर रह जाता है। इससे जागना पड़े, तो हम किसी दिन जान पायें उस प्रकाश को, उस आशीर्वाद को, उस योग को— जिसकी कृष्ण जैसे लोग चर्चा करते हैं। वो हमारे भीतर निहित है, बस जरा-सी बात है और हम इस तथाकथित बन्धनों को तोड़ सके, तो वो किनारे ही है हमारे। लेकिन इस छलांग के लगने की ही देर है। अगर हम बैठे रहेंगे, तो शब्दों की घंटियां बजती रहेंगी और अनुभव की झूटी लार टपकती रहेगी, कहीं कोई उसका सम्बन्ध नहीं।

किसी ने कहा—गीता, तो भीतर जरूर कहीं कोई घंटी बज जाती है। मगर मैं हैरान हुआ कि अगर गीता के नाम से वही बात कहूं, तो घंटी बज जाती है। अगर मैं गीता के नाम से नहीं, किसी और नाम से कहूं, तो कोई घंटी नहीं बजती। ये ही बात अगर कुरान का नाम लेकर कहूं, तो मुसलमानों के भीतर घंटी बजने लगती है। ये ही बात गीता के नाम से कहूं, तो उनके भीतर घंटी बन्द हो जाती है। आश्चर्यजनक! बहुत आश्चर्यजनक!! ऐसा बंधा हुआ तोते-जैसा मन धार्मिक नहीं हो सकता। इस मन को रोकना, तोड़ना, इस मन के पार होना जरूरी है।

● संकलन : *स्वामी धर्म सरस्वती*
● संपादन : *'आकुल' राजेन्द्र*

पाटकर हॉल, बम्बई में :

महा उद्घोष

—साधु आनन्द ब्रह्मदत्त

२२ अगस्त १९७२ ।

दिन बड़ा उदास, उदास-सा लगता रहा है आज । सारा दिन आकाश बादलों से आच्छादित था । हड़ताल के महारोग से ग्रसित बम्बई आज जैसे पूरे दिन कराहती रही थी । सब कुछ बड़ा फीका-फीका, बेरंग, बेरौनक लग रहा था । सांझ साढ़े छह बजे, मैं दो-तीन साधुओं के साथ रोज कीतरह अपार भीड़ से उफनाते चर्चगेट-स्टेशन के एक प्लेट फार्म पर उतरा । चारों ओर जन ही जन । जन-सागर । भव-सागर कैसे पार किया जाता होगा, नहीं जानता । जन-सागर पार करने में दांतों से पसीना आ गया । हम भागते हुए-से, पाटकर-हॉल में पहुंचते हैं । पर भीतर नहीं जाते । अभी दरवाजे पर ही खड़े रहते हैं, थोड़ी देर । लहराता जन-सागर पीछे छोड़ आया हूं, किन्तु ठहरा जन-सागर यहां भी ठेल रहा है । मित्रों को भीतर चलने का इशारा करता हूं और एक जन-सागर पीछे हो लेता है । तब तक स्टेज भी जन-सागर हो चुका है । पूरा का पूरा जन-सागर ।

सागराधीश अभी तक नहीं आये ।

पाटकर-हॉल का दरवाजा देखता हूं । कबीर की साखियां वातावरण में रेशम के गुब्बारों की तरह तैर रही हैं ।

सहसा जन-सागर उद्वेलित होता है ।

भीतर जैसे किसी ने रंगों के मटके उड़ेल दिए । दिन भर की उदासी, फीकापन फुरफुराकर उड़ चला ।

आज प्रभु की चिर-परिचित, प्यारी मुद्रा के दर्शन नहीं होते। स्टेज पर प्रश्नों का अम्बार लगा हुआ है। वे एक-एक पृष्ठ उठाकर पढ़ने, रखने लगते हैं। आज प्रवचन का अंतिम दिन है— प्रश्नोत्तर का दिन ... ...

थोड़ी ही देर में अंतरिक्ष से झर रहे फूलों के समान श्रीमुख से शब्द बरसने लगते हैं—

एक मित्र ने पूछा है — 'व्हाय डू यू कॉल युअर सेल्फ भगवान ?' और बड़े हिम्मतवर आदमी हैं कि उन्होंने यह भी लिखा है कि 'इफ यू आर रियली बोल्ड, यू मस्ट रिप्लाई माई क्वेश्चन'। पूछा है, आप अपने आपको भगवान क्यों कहते हैं ? ... ...

[भक् करके मेरी सारी शिराएं जल उठीं। मैंने अपलक उनकी ओर देखा। सागर मंद-मंद मुस्कुरा रहा है।]

... ... मैंने तो कभी कहा नहीं, लेकिन अब आप कहते हैं तो मैं कहता हूं कि मैं भगवान हूं ! और यह मैं इसलिए कहता हूं कि भगवान के सिवाय और कुछ होने का उपाय नहीं है। आप भी भगवान हैं। भगवान के सिवाय इस जगत में और कुछ भी नहीं है। तो अगर कोई दावा करता हो कि मैं भगवान हूं और आप भगवान नहीं हैं, तब यह दावा अपराधपूर्ण है। मैंने कभी कोई दावा नहीं किया, मैंने कभी कहा भी नहीं। पर इससे उलटी बात भी मैं नहीं कह सकता हूं कि मैं भगवान नहीं हूं, क्योंकि वह तो सरासर असत्य होगा। इतना ही कह सकता हूं कि भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है। और अब मैं क्या कर सकता हूं कि भगवान के सिवाय कुछ भी नहीं है ?

आप भी भगवान हैं ! इसका पता न हो, यह हो सकता है; इसका पता हो, यह हो सकता है। जिसको पता नहीं है, उसे पता करने की कोशिश करनी चाहिए। भगवान का अर्थ है—अस्तित्व, शुद्धतम अस्तित्व। वह जो हम हैं अपने मौलिक स्वभाव में—उसका नाम ही भगवत्ता है। लेकिन हमारे मन में भगवान को न मालूम क्या-क्या धारणायें हैं, उससे तकलीफ होती है। कोई सोचता है कि भगवान वह, जिसने दुनिया को बनाया। तो स्वभावतः मैंने दुनिया को नहीं बनाया, इसलिए ये झंझट तो मुझ पर नहीं है। मेरे पास पत्र आते हैं, कोई सोचता है कि अगर भगवान हैं,...वो कहते हैं कि अगर आप भगवान हैं, तो मैं गरीब हूं, मेरी गरीबी मिटाकर दिखाइये— अगर आप भगवान हैं, तो मेरी आंखें खराब हैं, आंखें ठीक करके बताइये। नहीं, भगवान

से वैसा भी मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। आपकी आंखें खराब हैं, इसके लिए आपके भीतर का ही भगवान जुम्मेवार है। इसमें थोड़ा फर्क करिये। आप गरीब हैं, आपके भीतर का भगवान ही जुम्मेवार है। और किसी बाहर के भगवान की तरफ मत देखिए, क्योंकि जिसे भीतर का भगवान दिखाई नहीं पड़ रहा है, उसे बाहर का भगवान दिखाई नहीं पड़ सकता। नहीं, मैं कोई ताबीज देने वाला भगवान भी नहीं हूं, कि कोई चमत्कार दिखाइये अगर भगवान हों ?

ऐसे तो मदारियों में भी भगवान होते हैं, लेकिन भगवान मदारी होने में बहुत रस लेते दिखाई नहीं पड़ते। ...भगवान से मेरा अर्थ है कि वह, जो आपकी शुद्धतम सत्ता है, जहां सब कचरा, जहां सब व्यर्थ असार अलग करके आपने अपने को देख लिया है। तो आप भगवान हैं। कोई दुनिया बनाने की जरूरत नहीं है आपके भगवान होने के लिए, नहीं तो फिर आप भगवान कभी हो न पायेंगे। पक्का समझ लेना। किसी की आंखें ठीक करने की जरूरत नहीं है आपको भगवान होने के लिए, नहीं तो फिर आप भगवान कभी हो न पायेंगे। और या फिर कोई डाक्टर भगवान हो जाए !

भगवान होने का अर्थ ही ये है कि वह जो हमारे भीतर छिपा स्वाभाव है—ताओ है—वह जो हमारे भीतर का अस्तित्व है, उस अस्तित्व की प्रतीति, उस अस्तित्व में प्रवेश। तो ये झंझट भी आपकी अलग कर दूं। नाहक आपको लगता है कि मैंने क्यों अपने को भगवान कहा ? अभी तक कहा नहीं था, आज आपको कह देता हूं कि मैं भगवान हूं ! ... ...

[फिर जन-सागर में सैलाब आ गया। पूरा हॉल सिमटकर फिर दो विशाल हाथों में परिवर्तित हो गया। तालियां ही तालियां। सिर के बाल तक खड़े हो गए। लगा कि जैसे पृथ्वी से अब उठा, अब उठा। दोनों हाथ पसार-कर, पंछी की तरह उड़ जाने की अद्‌भुत आकांक्षा भीतर प्रगट हुई।]

... ... उससे अड़चन मिटेगी। उससे सुविधा हो जायेगी। लेकिन इसका मतलब आप मत समझ लेना कि आप कुछ और हैं। आप भी वही हैं। देर-अबेर होगी आपको पहचानने में। लेकिन चेष्टा करें तो पहचान ले सकते हैं। **भगवान होना कोई दावा नहीं है। भगवान होना हमारा सहज स्वभाव है।**

वीणा के तार खामोश हो गए। लगा कि जैसे किसी ने बांसुरी होठों से हटा ली। लगा कि जैसे थिरकता हुआ चरण सहसा थम गया। लगा कि जैसे एक फूल खिलता ही चला गया, खिलता ही चला गया ... ...

भगवान रजनीश की जय !

भगवान रजनीश की जय !!

मैं मुड़-मुड़ कर कभी पूरे हॉल को देखता हूं, कभी अपने आपको। न जाने कौन बिना रुके चला जा रहा है।

:

दो बातें प्रश्नकर्त्ताओं से

भगवान उवाच :

प्रश्न पूछ लेना कठिन नहीं है। जवाब देना भी कठिन नहीं है। जो प्रश्न पूछा जा सकता है, उसका जवाब भी दिया जा सकता है। लेकिन, सच में ऐसे प्रश्न पूंछना, जो आपके काम पड़े, बहुत कठिन है। और वैसे प्रश्नों का जवाब देना भी आसान नहीं है, लेकिन आप वैसे प्रश्न पूछते ही नहीं। ऐसा लगता है, ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं है आपके पास जो आपकी जिंदगी में काम आनेवाला हो। आपके प्रश्न व्यर्थ के प्रश्न मालूम पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि बुद्धि में थोड़ी खुजली होती है, उससे आपको प्रश्न करना पड़ता हैं। कोई आदमी में कोई त्याग, कि कोई पुकार, कि कोई खोज हो, ऐसा नहीं। खुजली हुई ! थोड़ा खुजा लिया ! फिर खुजाने से खून निकल आया तो जिम्मा मेरा नहीं ! फिर पीछे तकलीफ हो तो जिम्मा मेरा नहीं।

अपनी तरफ हमारा शायद ध्यान नहीं है। शायद हमें खयाल ही नहीं है कि हम कुछ और भी हो सकते हैं, जो हम हैं उसके आलावा। जहां हम खड़े हैं, वहां से कहीं और पहुंचना भी हो सकता हैं। हमारा जीवन भी यात्रा बन सकता है, उसका हमें कोई खयाल नहीं है। हम पूछे चले जाते हैं कौतूहलवश, बिना इसकी फिक्र किए कि अगर इसका उत्तर मिल जाएगा, तो फिर क्या करना है ?

तो किसी ने पूछ लिया कि आप अपने को भगवान क्यों कहते हैं या कहलवाते हैं ? कोई भी उत्तर हो, तो इससे उस मित्र को क्या होगा ? कोई भी उत्तर हो, मैं कह दूं कि मैं भगवान हूं; मैं कह दूं कि मैं भगवान नहीं हूं। इससे उस मित्र को क्या होगा ? मेरे सम्बन्ध में दिया गया कोई भी वक्तव्य उस मित्र को क्या लाने वाला है? खुजली ! थोड़ी खरोंच लग जायगी, तकलीफ होगी। जिस मित्र ने पूछा है, वो परेशान घर लौटेगा। अगर जवाब न दूं, तो वह समझेगा कि मैं

हिम्मतवर नहीं हूं और जवाब दूं, तो उसकी खुजली में खून निकलेगा। वह भी मुझे पता है! अब वह परेशान लौटेगा। प्रश्न से उसे कोई हल नहीं होने वाला है, कोई राहत नहीं होने वाली है। फिर किसलिए पूछा है? हमें खयाल नहीं है कि क्यों पूछ रहे हैं, इसलिए हम बहुत से प्रश्न पूछते हैं, बहुत से उत्तर इकट्ठे कर लेते हैं। और हम वैसे के वैसे ही रह जाते हैं, जैसे थे। आगे के लिए आपसे कहता हूं—थोड़ा सोचकर पूछें। और सोचने के लिए एक कसौटी रख लें कि इसका जो उत्तर मिलेगा, उसका मैं क्या कर सकता हूं?

●●●

गाओ रे!

रजनीश के गुण गाओ रे ... गाओ रे ...
रजनीश के गुण गाओ रे!!
मैंने पाया एक रतन धन,
शीतल आंखें, शीतल है मन,
तुम भी पाओ रे! रजनीश के गुण गाओ रे ...
रजनीश के गुण गाओ रे!!
कल है काल, कल पे न जीयो,
अमृत छांड़ि जहर मत पीयो,
आज ही ध्याओ रे! रजनीश के गुण गाओ रे ...
रजनीश के गुण गाओ रे!!
जग में है आया रजनीश स्वामी,
घट-घट का वह अन्तर्यामी,
मत ठुकराओ रे! रजनीश के गुण गाओ रे ...
रजनीश के गुण गाओ रे!!
मैंने जब गुरु अपना पाया,
एक नया सूरज मुसकाया,
सब मुसकाओ रे! रजनीश के गुण गाओ रे ...
रजनीश के गुण गाओ रे!!

—के. के. शर्मा
दिल्ली

● अनुवाद : *स्वामी परमानंद भारती*

गुरु – शिष्य सम्बन्ध

"मैं स्वप्न - भंजक हूं और तुम्हारी तंद्रा को तोड़ना चाहता हूं"

— रजनीश —

माउन्ट आबू साधना शिविर में दिनांक १० जून १९७२ को भगवान श्री द्वारा अंग्रेजी में दी गई वार्ताओं से अनूदित प्रथम भाग ।

◂ स्वप्न से जागरण ▸

मनुष्य ऐसे जीता है कि जैसे नींद में हो । मनुष्य एक नींद ही है । जिसे हम जागना कहते हैं, वह भी नींद है । दीक्षा का मतलब होता है कि किसी जाग्रत के साथ आंतरिक-सम्बन्ध की स्थापना । इसके पहले कि आप किसी जाग्रत के साथ पूरी तरह से जुड़ जायं, आपका नींद से बाहर होना असम्भव है; क्योंकि मन ऐसे स्वप्न भी निर्मित कर सकता है कि वह नींद के बाहर हो गया है । मन ऐसा स्वप्न खड़ा कर सकता है कि अब नींद समाप्त हो चुकी, और किसी भी स्वप्न में आपको स्वप्न का पता नहीं चल सकता । स्वप्न को स्वप्न की तरह आप तभी जान सकते हैं, जबकि आप उससे बाहर हो जायं ।

आप स्वप्न को वर्तमान में कभी भी नहीं जान सकते । आप सदा इसे गुजरने के बाद, इसकी समाप्ति पर ही जान पाते हैं । यह स्वप्न है, ऐसा कोई भी कभी नहीं कह सकता । स्वप्न का वर्तमान-काल नहीं हो सकता । यह स्वप्न था, यही आप कह सकते हैं; क्योंकि स्वप्नावस्था में तो स्वप्न वास्तविक ही होता है । अगर स्वप्न सत्य प्रतीत न हो तो वह टूट ही जाएगा । सिर्फ वास्तविकता का आभास ही स्वप्न पैदा कर सकता है ।

जब मैं कहता हूं कि मनुष्य नींद ही है, तो इसे समझ लेना उचित है। हम लगातर चौबीस घंटे स्वप्न देखते रहते हैं। रात को हम बाहर के जगत से हटकर अपने भीतर स्वप्न देखते हैं। दिन में हमारी ज्ञानेन्द्रियां बाहरी जगत के के प्रति ग्राह्य हो जाती हैं, परंतु भीतर स्वप्न चलता रहता है। एक क्षण के लिए अपनी आंखों को बंद करते ही आप फिर स्वप्न में पहुंच सकते हैं। भीतर यह अविराम चलता ही रहता है। आपको बाहरी जगत का ज्ञान है, लेकिन यह जानना भी मन की स्वप्नावस्था के बिना नहीं है। यह स्वप्न-द्रष्टा मन से ही प्रभावित और उसी पर आधारित होता है। परंतु भीतर स्वप्न चलता रहता है। इसलिए हम तथ्य को कभी देख नहीं पाते, हालांकि हम तथाकथित जागे हुए लोग होते हैं। हम अपने स्वप्नों से वास्तविकता को रंग देते हैं। हम उसे, जो है, कभी नहीं देख पाते। हम सदा अपने प्रक्षेपण ही देखते हैं।

अगर मैं आपकी तरफ देखूं और मेरे भीतर कोई स्वप्न चल रहा हो, तो आप मेरे प्रक्षेपण के विषय हो जाते हैं। मैं अपने स्वप्न को आप पर प्रक्षेपित करूंगा और तब मैं जो भी आपके बारे में जानूंगा वह मेरे स्वप्न और मेरे प्रक्षेपण का सम्मिश्रण होगा। जब मैं आपको प्यार करता हूं, तो आप मुझे भिन्न प्रतीत होते हैं। जब मैं आपसे प्यार नहीं करता, तो प्रतीति कुछ और ही होती है— हाप वही नहीं होते। आप तो सिर्फ एक परदा होते हैं, जिस पर मैं अपने मन के स्वप्नों को चित्रित कर लेता हूं। जब मैं प्यार करता हूं, तो स्वप्न भिन्न होता है, इसलिए आप भी भिन्न मालूम पड़ते हैं। और जब मैं प्यार नहीं करता, तब आप वही होते हैं, परदा वही होता है, किंतु चित्रण कुछ और ही होता है; क्योंकि अब मैं आपको (परदे को) अपने दूसरे स्वप्न के लिए काम में ले रहा हूं। स्वप्न फिर बदल सकता है। मैं आपको फिर प्यार करने लग जाऊं और तब आप मुझे भिन्न प्रतीत होने लगेंगे।

हम वह कभी नहीं देखते—जो कि है; हम हमेशा अस्तित्व पर चित्रित अपने स्वप्न-द्रष्टा मन के प्रतिबिंब ही देखते हैं। इस तरह हमारा मन, हमारे चारों तरफ, स्वप्नों की एक दुनिया खड़ी कर देता है, जो कि कहीं नहीं होती, इसे ही हम भ्रम, माया कहते हैं। भ्रम का मतलब यह नहीं कि दुनिया है ही नहीं। रास्ते पर हो रहा शोरगुल नहीं है। यह है, पर जैसा यह है, उसे हम तब तक नहीं जान सकते, जब तक कि भीतर के स्वप्न शांत न हो जायं। किसी के लिए शोर संगीत बन सकता है और किसी के लिए मात्र बाधा। कभी आपको यह पता भी नहीं चलता कि शोर हो रहा है और कभी आपको मालूम

पड़े कि शोर हो रहा है। किसी क्षण में आप शोर को बर्दाश्त कर लें और किसी घड़ी वह आपके लिए असह्य और दुश्वार हो जाय। फिर भी शोर तो वही है, रास्ते भी वही हैं, और आवागमन का क्रम भी वही है; सिर्फ आपका स्वप्न देखने वाला मन बदल जाता है।

आपके मन के स्वप्न के साथ ही आपके चारों तरफ की हर वस्तु रूपान्तरित हो जाती है। जब हम कहते हैं कि दुनिया एक भ्रम है, माया है, तो अभिप्राय यह नहीं होता कि दुनिया है, वह है; लेकिन जैसी हम इसे देखते हैं, वह देखना भ्रम है—वह कहीं भी नहीं है। इसलिए जब कोई जागरण को उपलब्ध होता है, तो ऐसा नहीं कि यह दुनिया उसके लिए ओझल हो जाती है; बल्कि दुनिया के बारे में उसका सारा जानना बिलकुल खो जाता है। एक बिलकुल नई दुनिया, एक चिंतन से मुक्त दुनिया, उसका स्थान ले लेती है। आपके द्वारा दिए गए सभी रंग, सभी आकार, सभी अर्थ और सभी व्याख्याएं, जो कि आपके स्वप्न-द्रष्टा मन का परिणाम थीं, अब नहीं होतीं।

जहां तक इस माया के जगत, भ्रम की दुनिया और प्रक्षेपण के संसार का सवाल है, हम कभी भी एक दुनिया में नहीं रहते। हम में से हरेक अपनी ही दुनिया में रहता है। और जितने स्वप्न देखने वाले व्यक्ति हैं, उतने ही संसार हैं। मैं आप सबके लिए एक जैसा नहीं हूं। हरेक मुझ पर कुछ प्रक्षेपित कर लेता है। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो एक ही हूं। लेकिन अगर मैं भी स्वप्न देख रहा हूं, तो मैं स्वयं के लिए भी प्रतिपल भिन्न हूं। हर घड़ी मेरी व्याख्या बदल जायगी। अगर मैं जाग्रत हूं, तो मैं वही हूं। बुद्ध ने कहीं कहा है कि समुद्र के जल की तरह, जाग्रत का स्वाद हमेशा एक तरह का ही होता है। जैसे, किसी भी जगह और सभी जगह समुद्र नमकीन होता है।

अगर मैं जागा हुआ हूं, तो अपने लिए मैं एक जैसा ही हूं, न सिर्फ जीवन में, बल्कि सभी जीवनों में जो मैंने आज तक जिये हैं। मैं अनंतकाल से ऐसा ही हूं। मेरा वास्तविक अस्तित्व हमेशा एक-सा है। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। सिर्फ चित्रण बदलते रहते हैं। परदा वही बना रहता है, प्रक्षेपण बदलते रहते हैं, चित्र बदलते रहते हैं। लेकिन परदा कभी दिखाई नहीं पड़ता। इस पर प्रक्षेपित चित्र ही आप देख पाते हैं। परदा तभी दिखाई पड़ता है जब कोई प्रक्षेपण न हो, वरना परदा कभी दिखाई नहीं पड़ता। और परदा वही होता है, चित्र बदलते रहते हैं; लेकिन आप वह बदलाहट मुझमें देखते हैं। अगर मैं जग जाऊं, तब मेरे लिए तो मैं वही रह सकता हूं, फिर भी आप मुझे

अनेक तरह से देखेंगे; क्योंकि आप मेरे पास अपने स्वप्न-द्रष्टा मन के साथ आएंगे और वह प्रक्षेपण कर लेगा। **किसी को मैं मित्र दिखाई पड़ सकता हूं और किसी को शत्रु दिखाई दे सकता हूं—सब अपना प्रक्षेपण करेंगे। हम अपने चारों तरफ एक दुनिया निर्मित करते हैं और हरेक अपनी उसी दुनिया में रहता है, इसीलिए टकराहट होती है। संसार टकराते हैं, मेरा और आपका संसार।** इसलिए जब किसी कमरे में दो व्यक्ति रहना शुरू करते हैं तो दो संसार वहां रहते हैं और टकराहट रोकी नहीं जा सकती। उस कमरे में सिर्फ दो व्यक्ति नहीं रहते। दो व्यक्तियों के लिए कमरा काफी है। लेकिन दो दुनियाओं के लिए कमरा काफी नहीं है। जब कभी भी किसी एक कमरे में दो व्यक्ति होते हैं, तो वहां दो संसार होते हैं।

मनुष्य : एक मानवीय प्रक्षेपक यंत्र

मानव-समाज और मानव-संबंधों के सभी झगड़े, व्यक्तियों के नहीं, इन संसारों के झगड़े हैं। अगर वास्तव में, मैं अपने स्वप्न द्वारा निर्मित दुनिया से रहित होऊं और आप भी अपने स्वप्नों की दुनिया से रहित हैं, तो हम एक कमरे में बिना टकराहट के अनंतकाल तक रह सकते हैं। क्योंकि दो व्यक्तियों के लिए एक कमरा पर्याप्त है। लेकिन दो दुनियाओं के लिए तो यह पूरी पृथ्वी भी पर्याप्त नहीं है। और यहां तो अनेक दुनियाएं हैं, क्योंकि हर व्यक्ति एक दुनिया है, और वह अपनी ही दुनिया में रहता है, बंद रहता है। यह एक निद्रा है। आप चारों तरफ से अपने प्रक्षेपणों, विचार, धारणाओं, कल्पनाओं, व्याख्याओं से निर्मित झिल्ली में आवृत्त हैं। आप ऐसे प्रक्षेपण-यंत्र हैं, जो चित्रित करता ही जाता है ऐसी वस्तुओं को, जो कहीं भी नहीं हैं, सिर्फ आपके भीतर हैं। और सब एक विस्तृत परदा हो जाता है। आप स्वयं यह कभी भी नहीं जान सकते कि आप गहरी नींद में हैं।

हिज्जा एक सूफी फकीर हुए हैं, एक सूफी देवदूत। वे एक फकीर को स्वप्न में दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने उसे कहा कि अपने पीने के लिए काफी पानी बचाकर रख लो, क्योंकि कल सुबह शैतान दुनिया के सारे जल को विषैला करने वाला है, और जो भी वह पानी पियेगा, पागल हो जाएगा। इसलिए पूरी रात फकीर ने जितना पानी बचाकर रख सकता था, बचाने में बिता दी। असलियत में जो होना था, वही हुआ। दूसरे दिन सुबह सभी पागल हो गए। किसी को भी पता नहीं चला, पूरा शहर पागल हो गया। सिर्फ फकीर पागल नहीं हुआ। लेकिन पूरा शहर इसी तरह की बातें करता कि

जैसे फकीर पागल हो गया हो। वह यह जानता था, परंतु कोई उसकी बात का यकीन ही नहीं करता। वह अपना सुरक्षित जल पीता रहा और होश में रहा, परंतु वह इसे जारी नहीं रख सका। पूरा शहर एक बिलकुल ही अलग दुनिया में रह रहा था। उसकी बात कोई नहीं सुनता और अफवाह ऐसी थी कि अब उसे पकड़कर जेल में डाल दिया जायगा। उनका कहना था कि वह पागल हो गया है। एक रोज सुबह वे उसे गिरफ्तार करने के लिए आ गए। उसकी बीमारी का या तो इलाज होना चाहिए या उसे जेल में बंद रक्खा जाए। अब उसे आजाद नहीं रहने दिया जा सकता था। वह अब पूरा पागल हो गया था। जो कुछ भी वह कहता था, किसी की समझ में नहीं आता था। उसकी बोल-चाल की भाषा बदल गई थी। फकीर का तो दिमाग जवाब दे गया। उसने भरसक कोशिश की कि उनके अतीत की स्मृति को लौटा सके; परंतु वे सब कुछ भूल चुके थे। उन्हें पागल की उस सुबह से पहले का, अतीत का, कुछ भी खयाल नहीं था। वे कुछ भी नहीं समझे। फकीर उनकी दिमागी पकड़ के बाहर हो गया था। उन्होंने उसके घर को घेर लिया और उसे पकड़ लिया। फकीर ने उनसे कहा कि मुझे एक घड़ी की मोहलत दो, मैं अपना इलाज किये लेता हूं। वह दौड़कर एक सर्वसाधारण कुएं पर गया, उसका पानी पिया और वह दुरुस्त हो गया। अब सारा शहर खुश था। फकीर अब बिलकुल ठीक हो गया। अब वह पागल नहीं रहा। हकीकत में अब वह पागल हो गया था; परंतु अब वह साधारण जगत का एक हिस्सा हो गया था। अगर सभी नींद में हों तो आपको यह पता भी न चलेगा कि आप नींद में हैं। **अगर सभी पागल हैं और आप भी पागल हैं, तो इसका पता आपको कभी नहीं लगेगा।**

दीक्षा : जाग्रत के प्रति समर्पण

दीक्षा का मतलब यह है कि आप किसी जाग्रत को समर्पित हो चुके हैं। आप कहते हैं : "मैं यह कुछ भी नहीं समझ पाता मैं समझ नहीं सकता और मैं तो नींद में बेसुध दुनिया का ही हिस्सा हूं। मेरी दलीलें थोथी हैं; क्योंकि जो कुछ भी मैं कहता हूं, वह मेरी नासमझी से आता है। मेरी सभी क्रियायें बेहोशी में होती हैं। और फिर बाद में मैं इस पर अपनी समझदारी को बैठा लेता हूं। किसी के साथ प्रेम करने लगता हूं और तब समझने की कोशिश करता हूं कि मैं क्यों करता हूं, क्या है इसका कारण ? लेकिन घटनाएं इसी तरह घटती रहती हैं। पहले किसी वस्तु को पसंद कर लेता हूं और

फिर इस पसंद के लिए कारणों को तलाशता हूं। पहले हमेशा वस्तु पसन्द आती है, फिर पीछे से समझदारी और तब पसंद एक नासमझी ही है।"

यह विचार निद्रित व्यक्ति का भी हो सकता है, क्योंकि नींद हमेशा गहरी नहीं होती, वह बदलती रहती है, कभी बहुत गहरी, कभी बहुत छिछली ऊपरी सतह पर। नींद एक स्तर पर कभी नहीं होती। नींद में उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। साधारण नींद में भी उतार-चढ़ाव होते हैं। पूरी रात नींद में आप एक ही स्तर पर नहीं होते। कभी आप बहुत गहरे चले जाते हैं। इतने गहरे कि उसकी कोई स्मृति बाद में आपको नहीं रहती। अगर आप बहुत गहरे सोये होंगे तो सुबह आप कहेंगे कि मैंने कोई भी स्वप्न नहीं देखा। आपने स्वप्न देखा, परन्तु आप इतनी गहरी नींद में थे कि आपको उसकी याद नहीं रही। आज तो इस तरह के यंत्र हैं, जो यह सूचना दे सकते हैं कि आपने स्वप्न देखा। आप अस्वीकारते हैं, क्योंकि उसकी कोई स्मृति आपको नहीं रही। आप इतनी गहराई में थे और आपकी चेतन-स्मृति इतनी दूरी पर थी कि मस्तिष्क ने स्वप्न का कोई प्रतिबिंब ही नहीं पकड़ा। कभी आप बहुत हल्की नींद में ठीक सतह पर होते हैं, तब आप अपने स्वप्न को याद रख सकते हैं। हमें साधारणतया हमारे सुबह के स्वप्न याद होते हैं, ठीक नींद से जागने के पहले के। क्योंकि नींद बहुत छिछली होती है और अंतराल बहुत कम होता है।

साधारण निद्रा, अनेक सतहों और अनेक स्तरों का एक उतार-चढ़ाव है। कभी आप जागते और सोने के बीच की अवस्था में हिलोरें लेते रहते हैं। इस तरह की लहराने की हालत में आप बाहर की कुछ आवाजें सुन सकते हैं। उतार-चढ़ाव बहुत सतही हैं। आप सोने जा रहे हैं। आप कुछ सुनते हैं, कोई किसी बारे में कुछ कह रहा है, कुछ समझ में आता है, कुछ नहीं आता है और आप सुन सकते हैं। लेकिन फिर आप जल्दी बहुत गहरी नींद में सो जाते हैं। तब कोई बात करता हो तो आप नहीं सुन सकते। व्याख्या का कोई सवाल नहीं है। इसके मायने का कोई प्रश्न नहीं। आप नहीं सुन सकते।

ठीक जैसा इस साधारण नींद में होता है, वैसा ही उस अशरीरी-नींद में भी होता है, जिसकी बात मैं आपसे कह रहा हूं। कभी आप बिलकुल सतह पर होते हैं, बुद्ध के बहुत करीब। तब बुद्ध जो बात कर रहे हैं, कह रहे हैं, उसमें से आप कुछ सुन सकते हैं, आप कुछ समझ सकते हैं, लेकिन फिर भी यह ठीक वही नहीं होगा, जो कि कहा गया है। लेकिन आपको कुछ मिला,

सत्य की एक झलक मिली। **इसलिए जो व्यक्ति अपनी अशरीरी-निद्रा में सतह पर होगा, दीक्षित होना चाहेगा।** वह कुछ सुन सकता है। वह कुछ समझ सकता है। वह कुछ देख पाता है। सब कुछ धुंधला-धुंधला है, परन्तु वह कुछ महसूस करता हैं। तो वह एक जागे हुए व्यक्ति के पास जा सकता है और अपने को समर्पित कर सकता है। एक सोया हुआ व्यक्ति भी इतना कर सकता है। इतना किया जा सकता है, ताकि समर्पण फलित हो सके। इस समर्पण का मतलब हुआ कि वह समझता है कि उसकी नींद से भिन्न कुछ हो रहा है। कहीं वह महसूस करता है। वह इसे ठीक से नहीं जान पाता, फिर भी वह इसे महसूस करता है।

जब भी कभी बुद्ध गुजरते हैं, तो वे जो नींद में सतह पर होते हैं, यह महसूस करते हैं कि इस व्यक्ति में कुछ घटित हुआ है। इसका आचरण भिन्न है। यह अलग ही बोलता है। यह और तरह ही जीता है। यह अलग ही चलता है। इस व्यक्ति को अवश्य ही कुछ हुआ है। वे जो सतह पर हैं, ऐसा महसूस करते हैं; परंतु वे भी नींद में हैं। और यह सतह पर होना स्थायी नहीं है, वे फिर गहरी नींद में उतर सकते हैं। लेकिन एक शब्द भी उनकी नींद तोड़ सकता है। इसलिए इसके पहले कि वे गहरी बेहोशी में डूबें, वे किसी जाग्रत को समर्पित हो सकते हैं। यह दीक्षित की तरफ से दीक्षा घटित हुई। वह स्वीकारता है कि मैं असमर्थ हूं, मैं कुछ भी नहीं कर पाऊंगा। और मैं जानता हूं कि इस क्षण अगर तुम्हें समर्पित न होऊं, तो मैं फिर गहरी नींद में खो जाऊंगा। फिर यह समर्पण असंभव हो जायगा। इसलिए कुछ क्षण होते हैं, जो खोये नहीं जा सकते। और जो इन क्षणों को खो देता है, वह फिर सदियों तक जीवन में उन्हें दुबारा हासिल नहीं कर पाता। क्योंकि सतह पर आना आपके हाथ में नहीं है। अनेक कारणों से, जिन पर आपका कोई नियंत्रण नहीं, यह कभी संभव होता है। आपकी नींद पर आपका नियंत्रण नहीं हो सकता।

कभी ही ऐसा होता है कि बुद्ध गुजर रहे हैं। आप समर्पित हो सकते हैं। लेकिन सिर्फ तभी जबकि आप सतह पर हैं। बुद्ध के जीवन की एक बहुत अर्थपूर्ण कथा है। जब वे स्वयं जागरण को प्राप्त हुए, लगातार सात दिनों तक वे खामोश रहे। बोलने को उनकी कोई इच्छा ही नहीं हुई। बहुत प्यारी कथा है। देवता बहुत परेशान हुए। क्योंकि अगर बुद्ध चुप रहते हैं, तो उनका क्या होगा, जो कि सतह पर हैं। जो गहरी नींद में हैं, उनके लिए तो

वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। बुद्ध भी उनके लिए कुछ नहीं कर सकते। जो जागे ही हुए हैं, उनके लिए भी उन्हें कुछ नहीं करना था। उन्हें उनको सहायता की जरूरत ही नहीं थी। लेकिन फिर भी कुछ ऐसे थे, जो सतह पर ही थे और जिनको कि एक हल्का-सा धक्का भी जगा सकता था। उनकी मौजूदगी ही जिनके जागरण के लिए काफी हो सकती थी। इसलिए देवता बुद्ध के पास आये, प्रार्थना की और कहा कि ये कुछ बोलें। बुद्ध ने कहा कि वे ऐसे लोग हैं, जिनकी कि कोई मदद नहीं की जा सकती। वे इस तरह सोये हुए हैं कि उनसे कुछ कहना व्यर्थ ही होगा। वे जो मेरी बात सुन सकते हैं, जगे हुए ही हैं। तो उनसे बात करने का कोई प्रयोजन नहीं है। फिर किस लिए आप मुझे बोलने को कहते हैं, यह व्यर्थ है, मुझे चुप ही रहने दें। तो देवताओं ने कहा, लेकिन एक स्थिति के लोग और हैं, जो कि छूट गए हैं। वे इतनी नींद में भी नहीं हैं कि सुन नहीं सकते और इतने जागे हुए भी नहीं हैं कि समझ सकें। वे ठीक सतह पर हैं। वह सब जो आप कहें, वे न सुन पाएं, परन्तु आपका एक शब्द भी उनको जगाने के खिए काफी हो सकता है। इसलिए आप अवश्य बोलें। हजारों वर्षों के बाद ही ऐसा होता हैं कि कोई व्यक्ति बुद्ध हो जाए। उसे जरूर बोलना चाहिए, उसे खामोश नहीं रहना चाहिए। अवसर नहीं खोना चाहिए। बुद्ध सहमत हो गए।

शिष्य को समर्पण करना ही चाहिये

जिसे दीक्षित किया जाता है, उसे सिर्फ समर्पित ही होना है और कुछ भी काम नहीं देता। दीक्षा का मतलब होता है समर्पित होना। बौद्ध धर्म में दीक्षा और जिसे दीक्षित किया जा रहा हैं उसके लिए प्रयुक्त शब्द है "स्रोतापन्न", जिसका अर्थ होता है, वह जो प्रवाह में आ गया है। बुद्ध एक धारा की तरह प्रवाहित हो रहे हैं। जो अपने आपको समर्पित कर देता है, धारा के साथ बँध जाता है और बहना शुरू कर देता हैं, "स्रोतापन्न" है, वह जो धारा में आ गया है। धारा आपके पास नहीं आ सकती। धारा हमारे घर के पास से बह रही है, आप इसमें कूद सकते हैं। लेकिन अगर आपने तैरना शुरू कर दिया, तो आप प्रवाह को रोकना और उससे लड़ना शुरू कर देते हैं। तब आपका कोई उद्देश्य होगा और कोई गन्तव्य, जहां आपको पहुंचना है। इसी कारण कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो कि जाग्रत के पास पहुंचकर भी शंका-समाधान में ही लगे रह जाते हैं। वे कारणों की छानबीन तथा प्रमाण का आग्रह करने में लग जाते हैं, वे सहमत होना चाहते

हैं। यह झगड़े का रास्ता है। वे जाग्रत के साथ लड़ते हैं। इससे जाग्रत को कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन नुकसान आपको होता है; क्योंकि वह क्षण बेकार जा रहा है। आप मध्य-स्थिति में हैं, इसीलिए आप आए हैं। लेकिन अब आप उस क्षण को व्यर्थ गंवा रहे हैं। यह संभव है कि आप फिर गहरी नींद में खो जायं। समर्पण का मतलब है—वह जो प्रवाह के साथ बहना शुरू कर दे, जो स्वयं को प्रवाह को सौंप दे। तब धारा बहती है, वह इसका अनुसरण करता है। वह पूरी निश्चिन्तता में होता है— पूरी तरह बेफिक्र।

इस तरह दीक्षित की ओर से दीक्षा एक निश्चिन्तता है, एक पूर्ण विश्वास, एक पूरा समर्पण। यह कभी भी टुकड़ों में बंटी हुई नहीं हो सकती। अगर आप टुकड़ों में समर्पिप होते हैं, तो आप समर्पित नहीं हो रहे हैं और अपने आपको धोखा दे रहे हैं। टुकड़ों में विभाजित कोई समर्पण नहीं हो सकता; क्योंकि विभाजित समर्पण में कुछ आपके द्वारा रोक लिया जाता है। और वह आपका रोकना, आपको फिर गहरी नींद में धकेल सकता है। वह असमर्पित भाग बहुत खतरनाक सिद्ध होता है। किसी भी क्षण आप पुनः गहरी नींद में जा सकते हैं। समर्पण हमेशा पूरा ही होता है। इसीलिए विश्वास की आवश्यकता होती थी और दीक्षा में सदा विश्वास अनिवार्य होगा।

विश्वास एक पक्की शर्त के रूप में जरूरी है, एक पूर्ण अनिवार्यता है। और जिस क्षण आप पूरी तरह समर्पित होते हैं, परिवर्तन घटित होना शुरू हो जाता है। अब आप अपने स्वप्न-लोक में वापिस नहीं लौट सकते। समर्पण पूरे प्रक्षेपण-यंत्र को छिन्न-भिन्न कर देता है। पूरा प्रक्षेपक मन इस समर्पण से विसर्जित हो जाता है। क्योंकि यह प्रक्षेपक-मन अहंकार की खूंटी से बंधा होता है। बिना अहंकार के इसका अस्तित्व संभव नहीं। अहंकार ही इसका मुख्य केन्द्र है। मैं किसी को अपना मित्र कहता हूं, क्यों ? शत्रु वह है, जो मेरे अहंकार को चोट पहुंचाता है, और मित्र वह है, जो मेरे अहंकार के लिए खुराक जुटाता है, जो इसका पोषण करता है। इसीलिए हम कहते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर ही दोस्त की परख होती है। जरूरत के समय जो दोस्त काम दे, वही वास्तव में दोस्त है। जरूरत क्यों ? आवश्यकता क्या है ? आपके अहंकार की भूख से आपको आवश्यकताएं पैदा होती हैं, तभी दोस्त का पता चलता है। हमारे सपनों की पूरी दुनिया, हमारा स्वप्न-द्रष्टा मन, अहंकार की सीढ़ी पर ही ठहरे रहते हैं। अगर आप समर्पित हो जायं, तो पूरा आधार ही आप समर्पित कर देते हैं—आप पूर्णतया विसर्जित

कर देते हैं। अब आपका लहराना जारी नहीं रह सकता, क्योंकि स्वप्न विसर्जित हो गए हैं। इसलिए दीक्षा का अर्थ— यह पूर्ण समर्पण है।

गुरु का उत्तरदायित्व

आपका गुरू क्या करता है ? शिष्य का यह समझना आसान है कि दीक्षा क्या है। यह बहुत सरल है। यह ठीक ऐसा ही है कि कोई सोया हुआ आदमी जागने के लिए सहायता चाहे और वह किसी जाग्रत को समर्पित हो जाए। यह बहुत आसान है, इसमें कोई विशेष परेशानी नहीं होती। लेकिन गुरु के लिए मामला बहुत पेचीदा है, बड़ा कठिन है। साधारणतया हम सोचते हैं कि समर्पण बहुत कठिन है। आप असहाय हैं, आप कुछ कर ही नहीं सकते और आप समर्पित भी न हों ! लेकिन जितना अधिक आप जानेंगे, आप समर्पण की तरफ आएंगे। एक दिन ऐसा होकर ही रहता है, क्योंकि दूसरा कोई विकल्प ही नहीं है। असमर्पित-भाव से आप ज्यादा दिन टिक नहीं सकते, क्योंकि इससे आपके चारों तरफ दुःख, संताप और नर्क ही खड़ा हो जाएगा। आप इसे जारी नहीं रख सकते। वह घड़ी अवश्य ही आती है, जब आप अपनी ही हताशा और दुःस्वप्नों के वशीभूत हो, समर्पण कर देते हैं। यह दीक्षा का कोई कठिन हिस्सा नहीं है। यह बहुत सरल बात है। लेकिन आपके गुरु के लिए यह बड़ा टेढ़ा मामला है। इसमें बहुत-सी बातें शामिल हैं। बहुत-सी गुह्य बातें हैं, आम बातें नहीं। यह ठीक है कि हम आम बातों से, बाहरी बातों से समझना शुरू करें और फिर गूढ़ बातों, आंतरिक बातों की ओर अग्रसर हों।

समर्पण की तुलना में पहली बात उत्तरदायित्व है। वह, जो सोया हुआ है, समर्पित होता है। वह, जो जागा हुआ है, उत्तरदायी होता है। जब आप किसी बुद्ध, किसी जीसस या किसी मोहम्मद के पास जाते हैं, तो वे आपकी पूरी जवाबदारी अपने ऊपर ले लेते हैं। आप वह समर्पित करते हैं, जो आपके पास है। आपका समर्पण उससे अधिक नहीं हो सकता। आप नींद और स्वप्न से अधिक कुछ नहीं हैं। आप इसे समर्पित कर देते हैं। आपकी नींद, आपके स्वप्न, आपकी अतीत की सारी नासमझी आप समर्पित कर देते हैं। **समर्पण सदा अतीत का होता है और उत्तरदायित्व हमेशा भविष्य का होता है।** आपका कोई भविष्य नहीं होता, आपके पास सिर्फ अतीत के स्वप्न होते हैं। यादों की, स्वप्नों की बहुत जन्मों की एक लंबी शृंखला आप समर्पित कर देते हैं। यह भी आप बहुत कठिनाई से समर्पित करते हैं। इस अतीत

को भी मिट्टी समझकर समर्पित करना बहुत कठिन है। आपके पास इससे ज्यादा कुछ भी नहीं है। आप नींद में और स्वप्न देखते रहे हैं। आपके पास बहुत से स्वप्नों का विवरण होता है। अच्छे और बुरे, सुन्दर और कुरूप, लेकिन होते सभी स्वप्न ही हैं।

आप खोने के पहले समर्पित होते हैं और वह भी बड़ी मुश्किल से, बहुत कठिन और प्रयत्न के साथ। उसे भी आप बचा लेने की, रोकने की कोशिश करते हैं। कुछ अवश्य ही बचा लेना चाहिए! आपके पास है क्या? कुछ भी नहीं है, सिवाय स्वप्नों की एक बृहत्-शृंखला और एक लम्बी-निद्रा के। इसलिए शिष्य की तरफ से अतीत का समर्पण होता है। गुरु की तरफ से भविष्य की जबाबदेही होती है। वह उत्तरदाई होता है और सिर्फ वही जिम्मेदार हो सकता है। आपको कभी जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। वह जो नींद में है, जिम्मेदार कैसे हो सकता है? उत्तरदायित्व कभी भी नींद में भागीदार नहीं होता। अगर आप नींद में किसी की हत्या कर दें यदि आप एक Somnambulist, नींद में चलने वाले हैं और आप कोई हत्या कर देते हैं, तो कोई भी न्यायालय आपको जिम्मेदार नहीं ठहराएगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई उत्तरदायित्व नहीं है। एक आदमी जो गहरी नींद में है, कैसे उत्तरदाई हो सकता है? आप अपने स्वप्नों के लिए स्वयं की जिम्मेदारी कभी महसूस नहीं करते। आप कत्ल कर सकते हैं, लेकिन आप कहेंगे कि वह तो सिर्फ स्वप्न था। **उत्तरदायित्व जागरण के साथ आता है। यह वास्तव में जीवन का आधारभूत नियम है। जो सोया हुआ है, वह अपने लिए भी उत्तरदाई नहीं है, परन्तु जो जागा हुआ है, वह औरों के लिए भी जिम्मेदार है।**

जाग्रत पुरुष और हमारी मूर्छा

ज्ञान और जागरण को उपलब्ध व्यक्ति यह महसूस करता है कि आप द्वारा की गई सभी गड़बड़ी के लिए वह जिम्मेदार है। एक बुद्ध करुणा से भर जाते हैं। आपके पापों और अपराधों के लिए बुद्ध स्वयं को दोषी महसूस करते हैं। वे स्वयं को उनमें उलझा हुआ, उनके लिए जवाबदार, महसूस करते है। उन्हें यह पता है कि आप कुछ नहीं जानते और वे पूरी तरह जानते हैं। उदाहरण के लिए, तीसरा महायुद्ध होने को है। वह जो जागा हुआ है, बहुत अच्छी तरह जानता है कि यह होने जा रहा है। यह प्रतिदिन नजदीक आ रहा है। जल्दी ही यह हमारे ऊपर आ जाएगा। आप सो रहे हैं और बहुत गहरी नींद में हैं। वह नींद में नहीं है, न कोई स्वप्न उसे घेरे है,

वह एक 'राडार' की तरह पूरा होश में है। वह आनेवाले भविष्य को भी जानता है। वह स्वयं को दोषी महसूस करता है, उसे अवश्य ही कुछ करना होगा। मान लीजिए आप किसी हवाई जहाज में हैं। जहाज आकाश में उड़ रहा है, आप नींद में हैं, स्वप्न देख रहे हैं; परन्तु विमान-चालक सब खबर रखता है। अगर कुछ होने को है, अगर इंजिन में कोई आवाज होने लगती है, बहुत हल्की आवाज, कोई भी इस बारे में कुछ नहीं जानता कि कोई खराबी हो गयी हैं। सिर्फ वही जिम्मेदार होगा, अन्य कोई भी उत्तरदायी नहीं है। वह और सिर्फ वही पूरी तरह जागा हुआ है।

हमारे पापों और अपराधों के लिये बुद्ध अपने आपको जिम्मेदार महसूस करेंगे। जीसस की पूरी कहानी इसी जिम्मेदारी पर आधारित है। पूरी ईसाइयत, पूरी धारणा, इसी जवाबदारी से प्रारंभ होती है। वे आदम से आज तक की पूरी मनुष्य जाति के सभी पापों के लिए स्वयं को जिम्मेदार महसूस करते हैं। जीसस उत्तरदायित्व को महसूस करते हैं। वे अपने कंधों पर क्रॉस को उठा लेते हैं, ताकि हमारे पापों को माफ कर दिया जाय—हमें छोड़ दिया जाय। वे किसी भी प्रकार से उत्तरदायी नहीं हैं। अगर आदम ने कुछ किया और पूरी मनुष्य-जाति के दिमाग ने कुछ किया, तो उस सबके लिए वे जिम्मेदार क्यों हों? ईसाई मतावलम्बियों ने इस प्रश्न पर सदियों तक बहस की। उन्होंने कोई पाप नहीं किया, फिर भी मैं कहता हूं कि वे अपने को उत्तरदायी महसूस करते हैं; क्योंकि वे जागे हुए हैं। जागरण की इस घटना के कारण ही, वे उस सब के लिए जिम्मेदार हो जाते हैं, जो कि सोये हुए लोगों द्वारा किया गया है। उनका बोझ बढ़ गया—उनका क्रॉस भारी है। उनको सूली लगना तो प्रतीकात्मक है। वे हमारे लिए मौत को स्वीकार कर लेते हैं, ताकि हम जीवित रह सकें। इसी कारण से जीसस का सूली लगना एक ऐतिहासिक घटना बन गया।

वे एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो पूरी मनुष्य जाति के लिए अपनी जवाबदारी को महसूस करते हैं और उसके लिए प्राण दे देते हैं, ताकि मनुष्य में रूपान्तरण घटित हो सके। लेकिन उनकी मृत्यु से भी हमारे भीतर कोई रूपान्तरण नहीं हुआ। उनका सन्देश हमने अपने स्वप्न में सुना और हमने उसे अपने तरीके से समझ लिया। तब उनकी जिन्दगी भी हमारे स्वप्नों के संसार का एक हिस्सा बन जाती है। तब हम चर्च और मत बना लेते हैं। तब हम पंथ निर्मित कर लेते हैं। तब कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट मतों के

अलावा और बहुत से पंथ हो जाते हैं। पूरी नासमझी बहुत से नये रूपों में वापिस लौट आती है, और दुनिया वैसी ही रह जाती है। हम उनकी पूजा शुरू कर देते हैं, अर्थात् हम उनके बारे में स्वप्न देखना शुरू कर देते हैं कि वे परमात्मा के पुत्र थे। हम दीक्षित नहीं हो पाते, हम रूपान्तरित नहीं हो पाते। इसके विपरीत, हम उनकी वास्तविकता को अपने स्वप्नों के अनुरूप बना डालते हैं। उनके लिए हम एक चर्च बना लेते हैं, उनकी एक मूर्ति खड़ी कर देते हैं, हम उनकी पूजा करते हैं और अपनी नींद को जारी रखते हैं। **देखा जाय तो हम उनका उपयोग नींद की गोली के रूप में शुरू कर देते हैं। यह हमारा छुट्टी के दिन का काम हो जाता है।** सप्ताह में एक घंटे के लिए हम उनके पास जाते हैं, फिर हम अपनी लकीरों पर चलते रहते हैं। हमें अच्छी तरह से सोने में, वे मदद पहुंचाते हैं, हमें भीतर इससे आराम पहुंचता है, हम धार्मिकता का अनुभव करते हैं। हम चर्च जाते हैं, प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं और वैसे के वैसे घर लौट आते हैं— हम और तसल्ली पा जाते हैं। अब धार्मिक होने की, रूपान्तरित होने की, कोई चिंता हमें नहीं रही; क्योंकि धार्मिक तो हम हैं ही। क्योंकि हम चर्च गये, हमने पूजा और प्रार्थना की, तो फिर हम धार्मिक ही हैं और तब सभी कुछ उसी प्रकार चलता रहता है।

समर्पण : उत्तरदायित्व से मुक्ति

समर्पण के अनुरूप होता है उत्तरदायित्व। उत्तरदायित्व का मतलब होता है जवाबदारी। इसका मतलब हुआ कि जीसस आपके लिए जवाबदारी को महसूस करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि अगर कहीं कोई परमात्मा है, तो वे उत्तरदायी हैं। उनसे पूछा जायगा और उन्हें जवाब देना होगा कि मनुष्यता के साथ ऐसा क्यों हुआ ? उत्तरदायित्व का मतलब यही होता है। एक सामान्य घटना की तरह वे इसको स्वयं के लिए महसूस करते हैं; लेकिन अगर आप उनके पास आते हैं और अपने को समर्पित कर देते हैं, तो वे फिर आपके लिए खास तौर से उत्तरदायित्व का अनुभव करते हैं।

●●●

नोट :

इसका शेष और दूसरा भाग अगले माह अक्टूबर के अंक में।

भूल सुधार :

पृष्ठ ५२ पर माउन्ट आबू शिविर १९७२ के स्थान पर १९७१ पढ़ें।

भगवान रजनीश जन्म दिवस विशेषांक

सुविज्ञ-प्रमियों, साधना-पथ के राहियों और संन्यासी मित्रों से सस्नेह निवेदन है कि भगवान रजनीश जन्म-दिवस विशेषांक के लिए भगवान के प्रति अपने काव्य रूपी भाव-सुमन, संस्मरण, अप्रकाशित-पत्र एवं अन्य कोई घटना-प्रसंग जो आपके जीवन को भगवान के साधना-पथ से आलोकित कर गये हों, '*युक्रांद*' में प्रकाशनार्थ सादर आमंत्रित हैं।

रचनायें पृष्ठ के एक ओर, सुस्पष्ट लिखावट में १५ अक्टूबर, ७२ तक भेजने की कृपा करें।

निवेदक : स्वामी धर्म सरस्वती

व्यवस्थापक : *युक्रांद, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर*

नई ज्योतियां ! दिव्य वाणी ! जीवन संगीत से आलोकित !

नई साज सज्जा में

भगवान रजनीश के विचारों की आध्यात्मिक

त्रैमासिक संकलन पत्रिका

ज्योति शिखा

संपादन : मा योग क्रांति, स्वामी कृष्ण कबीर

वार्षिक : मूल्य ८ रु.

संपर्क : जीवन जागृति केन्द्र,

३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,

मस्जिद बंदररोड, बम्बई-९

Phone : 327618

साधना शिविर

भगवान के आशीष
की अमृत-वर्षा

साधना की अतल गहराइयों
में उतरने हेतु माऊंट-आबू में
भगवान रजनीश के सान्निध्य
में 'ध्यान-साधना-शिविर'
का आयोजन

दिनांक: १३ अक्टूबर से
२१ अक्टूबर ७२ तक

संपर्क सूत्र:
स्वामी सत्य बोधिसत्व,
जीवन जाग्रति केन्द्र,
खाडिया चार रास्ता, अहमदाबाद – १
फोन: २४०८३

युक्रान्द

सितंबर १९७२